ISSN: 2583-5149 | Vol. 2, Issue. 2 |December 2022 | Frequency: Biannual

अभिनवधारा
ABHINAVDHARA
International Journal of Innovation in Indic Studies
www.ijiis-org.com

भारतीय ज्ञान प्रणाली द्वारा चरित्र व राष्ट्र निर्माण

सचिन गौतम

शोधार्थी हिन्दी विभाग

गुरु जंभेश्वर विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी विश्वविद्यालय, हिसार

Received: 20 December 2022 | Accepted: 25 December 2022 | Published: 31 December

शोध सारांश:

राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र निर्माण हुए बिना राष्ट्र निर्माण असंभव है। कोई भी राष्ट्र तभी प्रगति करेगा जब वहाँ के नागरिक चरित्रवान हों। किसी व्यक्ति का चरित्र यदि पवित्र है तो समाज स्वतः ही प्रगति करेगा और यदि समाज प्रगति करेगा तो राष्ट्र भी प्रगति की और अग्रसर होगा। चरित्र के पवित्र होने से तात्पर्य नैतिक आदर्शों का पालन करने तथा जीवन में मानवीय मूल्यों के समावेश से है, आत्मकेन्द्रित व स्वार्थी न होकर निःस्वार्थ भाव से एक दूसरे की सहायता करने से है। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का सम्पूर्ण प्रयास विद्यार्थी के चरित्र को सुदृढ़ बनाने की और प्रवृत्त था। उसका लक्ष्य मनुष्य के चरित्र का सर्वांगीण विकास करके उसे शारीरिक रूप से मज़बूत, तीक्ष्णबुद्धि और आत्मविश्वास से युक्त करना था। गुरुकुल व्यवस्था में विद्यार्थी को शिक्षा पूरी होने तक इसीलिए रखा जाता था ताकि वह बाह्य संसार में न उलझकर विशुद्ध रूप से अपना ध्यान अधिगम पर केंद्रित करे। क्योंकि मनुष्य का व्यक्तित्व ही उसकी शक्ति का स्रोत होता है। किसी राष्ट्र में रहने वाले मनुष्य शक्तिशाली होंगे तो वह राष्ट्र भी शक्तिशाली होगा।

भारतीय ज्ञान प्रणाली ने व्यक्ति को केंद्र में रखते हुए भारतीय समाज को स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति में निहित गरिमा के आधार पर गठित किया। जहां 'वसुधैव कुटुंबकम्' के माध्यम से मनुष्य की भ्रातृत्व की भावना को बढ़ाया गया वहीं 'आ नो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वतो:' जैसे उदात्त विचारों के द्वारा मनुष्य की विचार

ग्रहण क्षमता का विस्तार करने का प्रयास किया गया। गीता में कृष्ण ने अर्जुन को भक्तियोग, कर्मयोग और ज्ञानयोग का जो ज्ञान दिया वह सिर्फ़ अर्जुन के लिए न होकर सम्पूर्ण मानवजाति के कल्याण के निमित था। प्राचीन भारत में दर्शन, खगोल, सांख्य, अर्थशास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि की जो शिक्षा दी जाती थी उससे विद्यार्थियों व शोधार्थियों का न केवल व्यक्तित्व विकास हुआ बल्कि इससे सम्पूर्ण राष्ट्र की ख्याति विदेशों तक भी फैली। प्राचीन भारतीय वेदादि ग्रंथों में विद्या को ही मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया है। पुराणों में ज्ञान को अप्रतिम माना गया। विद्यार्थीयों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से संबंधित ज्ञान से विभूषित कर उनके चरित्र को मज़बूत करने का काम किया गया। भारत में स्थित नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला, उज्जयिनी, काशी आदि विश्वविद्यालय शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केंद्र रहे जहां न केवल भारतवर्ष के बल्कि विदेशों से भी शोधार्थी ज्ञानार्जन के लिये आते थे। आर्यभट्ट, वराहहमिरी, बोद्धायन, शंकराचार्य, कात्यायन, कणाद व भृतृहरि जैसे आचार्य हुए जिन्होंने न केवल शिक्षार्थियों को बौद्धिक व नैतिक रूप से समृद्ध किया बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में अपने दर्शन व सिद्धांतों की अमिट छाप भी छोड़ी, जिन्हें समझने में वर्तमान समय का तथाकथित शिक्षित मनुष्य आज भी असमर्थता महसूस करता है।

वर्तमान समय में आवश्यकता है कि प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली को उसके संपूर्ण स्वरूप के साथ समझा जाये व अंगीकृत किया जाये। पूरा विश्व जहाँ आधुनिकता की और अग्रसर है, वहाँ पर हमारे ऋषियों, विद्वानों व मनीषियों का ज्ञान तथा पवित्र चरित्र की शक्ति के साथ भारत सम्पूर्ण विश्व में सिरमौर हो सकता है।

बीज शब्द:

चरित्र, भारतीय वांगम्य, आत्मसम्मान, आत्मसंयम, स्वाभिमानी, स्वावलंबी, शिष्टाचार, स्वस्तिवचन मंत्र, समावर्तन, ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, सन्यासाश्रम, ब्रह्ममुहूर्त, कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, अधिगम, वसुधैव कुटुंबकम्, राष्ट्र निर्माण।

मूल आलेख:

प्राचीन भारत की शिक्षा व्यवस्था तथा शिक्षण पद्धतियाँ संपूर्ण विश्व में प्रसिद्ध रहीं हैं। विदेशों से भी विद्यार्थी व शोधार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से आते रहें हैं। यहाँ की शिक्षा व्यवस्था इतनी उत्कृष्ट थी कि विद्यार्थी को केवल बाहरी शिक्षा प्रदान न करके आंतरिक रूप से भी उसके चरित्र व व्यक्तित्व को मज़बूत बनाने का काम करती थी। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का प्राथमिक उद्देश्य मनुष्य के चरित्र का निर्माण करना तथा उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना था। भारतीय संस्कृति में व्यक्ति के चरित्र को ही

सर्वश्रेठ माना गया है। चरित्र से अभिप्राय मनुष्य के आचरण से है। सद्चरित्र की अपेक्षा केवल मनुष्य से ही की जा सकती है क्योंकि संसार के समस्त प्राणियों में मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है। महाभारत के शान्तिपर्व में पितामह भीष्म युद्धिष्ठिर को उपदेश देते हुए इस सत्य का उद्घाटन करते हैं –

"गुह्यं ब्रह्म तदिदं वो ब्रवीमि, न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्"(1)

अर्थात् ब्रह्म का यही रहस्य है कि सृष्टि में मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य को जो सर्वश्रेष्ठ बनाता है वो है उसका सद्चरित्र। प्राचीन भारतीय वांगम्य में सद्चरित्रता को व्यक्ति का सबसे बड़ा आभूषण माना गया है। मनुस्मृति में कहा गया है कि किसी भी प्रकार से चरित्र की रक्षा की जानी चाहिये। चरित्र का महत्व धन से भी अधिक है। धन तो आता-जाता रहता है। धन के नष्ट हो जाने पर भी चरित्र सुरक्षित रहता है। लेकिन चरित्र यदि नष्ट हो जाये तो धन-संपदा का भी कोई महत्व नहीं रह जाता। कोई व्यक्ति कितना भी बड़ा विद्वान हो, यदि उसका आचरण सही नहीं है तो वह विद्वान कहे जाने के योग्य नहीं है। इसके विपरीत कोई अल्पबुद्धि व्यक्ति भी यदि आचरणशील है तो उसे श्रेष्ठ माना जाएगा। भारतीय दार्शनिकों ने विद्वता से भी अधिक महत्व चरित्र को दिया है।

इसलिए प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति ने विद्यार्थी के चरित्र निर्माण पर विशेष बल दिया। उसके व्यक्तित्व में आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, आत्मसंयम, विवेक- शक्ति आदि गुणों को सृजित करने का काम किया। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों वेदादी के माध्यम से समानता, एकता तथा अखंडता का संदेश दिया गया। "समानो मंत्र: समिति: समानी, समानं मन: सहचित्तमेषाम् । समानं मंत्र अभिमंत्रये व:,समानेन वा हविषा जुहोमि।।" अर्थात् हम सभी मनुष्यों के विचार समान हैं। समिति और सभा समान हैं, मन समान हों और चिंतन एक साथ समान उद्देश्य वाला हो। हे मनुष्य ! मैं तुम्हें समान विचारों वाला कहता हूँ और समान ख़ान-पान तथा यज्ञ भावना से युक्त करता हूँ। इस प्रकार एकता व समानता जैसे उदात्त विचारों के माध्यम से राष्ट्रीय एकता की भावना का प्रसार करने का काम किया गया।

प्राचीन शिक्षा व्यस्था में जहां एक विद्यार्थी को स्वावलंबी व स्वाभिमानी बनने की शिक्षा दी गई, वहीं उसे दूसरों के साथ भ्रातृत्व व स्नेहभाव से रहना व निस्वार्थ भाव से परमार्थ करना सिखाया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती में लिखा है-

" मनुष्य वही है जो मनुष्य के लिये मरे।"

भारतवर्ष के आचार्यों ने जहां मनुष्य के चरित्र का विकास करके उसमें सेवा, दया, परोपकार, उदारता, त्याग, शिष्टाचार और सद्व्यवहार आदि जैसी बाह्य चारित्रिक विशेषताओं को समाहित किया, वहीं उसे चिन्तनशील, परिस्तिथि अनुकूल शांत व गंभीर तथा नियमित व्यवस्थित जीवन जीने के योग्य बनाया।किसी व्यक्ति के आचरण के अनुरूप ही उसके चरित्र का निर्माण होता है। भारतीय आचार्यों ने विभिन्न प्रकार के अधिगम तथा वास्तविक प्रयोगों द्वारा मनुष्य के आचरण को शुद्ध करने का काम किया। भारतीय संस्कृति के अनुसार जब भी किसी व्यक्ति के उज्जवल भविष्य की कामना की जाती है तो स्वस्तिवाचन मंत्र का जाप किया जाता है। इस मंत्र की पहली ही पंक्ति मनुष्य को सभी दिशाओं से सात्विक विचार ग्रहण करने का आह्वान करती है,

"आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरितासउद्भिदः।

देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे॥"(2)

अर्थात् विश्व की सभी दिशाओं से कल्याणकारी विचार हमारी तरफ़ आएँ। वे विचार जो किसी से न दबें, उन्हें कहीं से बाधित न किया जा सके एवं वे अज्ञात विषयों को प्रकट करने वाले हों। मनुष्य को जीवन के प्रारंभ से ही ऐसा बनाया गया कि वह प्रत्येक अच्छे विचार को प्रत्येक स्थान से ग्रहण कर सकें। भारतीय भाषा और भारतीय साहित्य इसका सबसे अच्छा उदाहरण हैं। आगे चलकर छटी शताब्दी ईसा पूर्व में महात्मा बुद्ध ने भी अपने उपदेशों में कहा कि आप किसी एक विचार या सिद्धांत से मत बँधिये । यदि आप किसी एक विचार तक ही स्वयं को सीमित रखेंगे तो सम्पूर्ण ब्रह्मांड में जो ज्ञान की अनंत गंगा प्रवाहित हो रही है, आप उससे वंचित रह जाएँगे। उदाहरण के लिए किसी पक्षी का बच्चा यदि घोंसले को ही अपना संसार समझने लगे तो वह खुले आकाश में स्वच्छंद रूप से कभी नहीं उड़ पाएगा। अच्छे विचार जहां से भी मिलें उन्हें तुरंत ग्रहण कर लेना चाहिए।

भारतीय शिक्षा प्रणाली ने मनुष्य के चरित्र को परिस्तिथि के अनुकूल आचरण करने वाला बनाया। जहाँ पर शांत रहने की बात आये तो मनुष्य का व्यक्तित्व शालीनता से पूर्ण हो तथा जहाँ अन्याय का प्रतिकार करने की या पराक्रम दिखाने की बात आए तो वह अपने तेज की शक्ति भी दिखा सके। सम्राट हर्षवर्धन, पृथ्वीवल्लभ तथा राजा भोज जैसे सम्राट भारतवर्ष में हुए जो अतुल्य पराक्रम के स्वामी तो थे ही साथ ही कला व साहित्य के मर्म ज्ञानी भी थे। इन सबका बहुआयामी व्यक्तित्व भारतीय शिक्षा प्रणाली का ही परिणाम था। अतिथियों का सत्कार करना भी भारतवर्ष की पुरानी परंपरा रही है। यह हमारी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के ही

संस्कार थे कि हमने अतिथि को सदैव देवता के तुल्य माना। उपनिषदों में कई स्थानों पर इसका वर्णन मिलता है-

"मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवों भव। (3)

माता-पिता व शिक्षक को तो भगवान माना ही गया, इसके साथ ही अतिथि को भी ईश्वर का दर्जा दिया गया। यही भारतीय संस्कृति की सुंदरता है।

भारत में महापुरुषों और वीर पुरुषों को आदर्श के तौर पर अपनाया गया। आचार्यों ने विद्यार्थी के समक्ष विभिन्न महापुरुषों राम, कृष्ण, बुद्ध, सीता, अनुसूया, सावित्री आदि जैसे चरित्रों के आदर्श प्रस्तुत किए। उनके जीवन संघर्ष के दृष्टांत देकर विद्यार्थियों को चरित्र की शक्ति समझायी गई। जिनसे प्रेरित होकर विद्यार्थियों ने उनके गुणों को अपने चरित्र में धारण कर लिया। राम मर्यादा पुरूषोत्तम इसीलिए माने गये क्योंकि उन्होंने अपने चरित्र को पवित्र बनाये रखा । बुद्ध इस देश के लोगों के प्रेरणास्रोत इसलिये बने क्योंकि उन्होंने जो बातें अपने उपदेशों में कही, उन बातों को स्वयं के ऊपर चरितार्थ किया। मनुष्य का चरित्र यदि सत्यनिष्ठा, मानवता, करुणा, दया आदि जैसे उदात्त भावों से युक्त है तो वह श्रेष्ठ मनुष्य कहलाने के योग्य है। प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली का यही उद्देश्य रहा कि युवाओं में इन उदात्त भावों की स्थापना करके उन्हें श्रेष्ठ मनुष्य बनाया जाये ताकि वे राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान दे सकें।

वैदिक काल में मनुष्य के संपूर्ण जीवनकाल को चार आश्रमों में विभक्त किया गया था, ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यास आश्रम। मनु ने मानव आयु सामान्यत: एक सौ वर्ष मानकर उसको चार बराबर भागों में बाँटा है। प्रथम चतुर्थांश ब्रह्मचर्य आश्रम है। इस आश्रम में गुरुकुल में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्यार्जन करना ही विद्यार्थी का परम कर्तव्य था। ब्रह्मचर्य उपनयन संस्कार के साथ प्रारंभ होता था और समावर्तन के साथ समाप्त होता था। ब्रह्मचर्य पालन से तात्पर्य है सात्विक तरीक़े से जीवन बिताना, शुभ विचारों द्वारा अपने वीर्य का रक्षण करना और भगवान का ध्यान करते हुए विद्या ग्रहण करना।

संस्कृत साहित्य में विद्यार्थी जीवन से संबंधित एक श्लोक प्रसिद्ध है-

"काक चेष्टा बको ध्यानं, श्वान निद्रा तथैव च ।

अल्पहारी गृह त्यागी, विद्यार्थी पंच लक्षणं॥"

काक चेष्टा से अभिप्राय है एक व्यक्ति को कौवे जैसी चेष्टा (प्रयास) करने वाला होना चाहिए। प्रारंभिक कक्षाओं में मूल्य बोध के विषय में विद्यार्थियों को एक लघु कथा पढ़ाई जाती है कि किस प्रकार प्यास से व्याकुल कौवे ने अपने निरंतर प्रयासों से घड़े के जल को ऊपर की ओर उठा लिया था और अपनी प्यास बुझाई थी। एक विद्यार्थी को भी इसी प्रकार बिना विश्रांत हुए, असफलताओं को नज़रअंदाज़ करते हुए निरंतर प्रयास करने वाला होना चाहिए।

बको ध्यानम् से अभिप्राय है कि विद्यार्थी को बगुले के समान ध्यान करने वाला होना चाहिए। एक बगुला (सारस पक्षी) शिकार करने के लिये एक योगी पुरुष के समान एक टाँग पर खड़ा हो जाता है ताकि मछलियाँ भ्रमित होकर उसके पास आ जायें। उसके पास कई छोटी-छोटी मछलियों का झुंड आता है पर वह उन्हें नज़रअंदाज़ कर देता है क्योंकि उसका लक्ष्य एक बड़ी मछली का शिकार करना होता है जो उसकी क्षुब्धा को शांत कर सके। बगुले की इस तपस्वी अवस्था पर विश्वास करके जब कोई बड़ी मछली उसके पास आती है तो वह उसी क्षण उसका भक्षण कर लेता है। एक विद्यार्थी को भी इसी प्रकार एक योगी के समान होना चाहिए, अपने लक्ष्य पर पैनी नज़र रखनी चाहिए।बीच में आने वाले छोटे-छोटे प्रलोभनों की उपेक्षा करके अपने अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये।अर्जुन की भाँति उसका ध्यान सिर्फ़ चिड़िया की आँख पर एकाग्र होना चाहिए। बीच में आने वाली ऐसी बाधाएँ जो उसे लक्ष्य से भ्रमित करने का कार्य करें, उन्हें अपने नेत्रों से ओझल कर देना चाहिए।

श्वान निद्रा से अभिप्राय श्वान अर्थात् कुत्ते की नींद से है। श्वान को संसार में सर्वाधिक विश्वसनीय जानवर माना गया है। एक बंजारे के प्रति कुत्ते की वफ़ादारी का दृष्टांत कई भारतीय लोक कथाओं में है। श्वान चाहे कितनी भी गहरी नींद में क्यों न सोया हो, अपने आस-पास जरा सी आहट पाते ही वह सतर्क हो जाता है। एक विद्यार्थी को भी इसी प्रकार नींद में भी सतर्क रहना चाहिए। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में 'ब्रह्ममुहूर्त' का ज़िक्र है। ब्रह्ममुहूर्त का समय प्रातः 3 बजे से लेकर 5 बजे तक माना गया है। इसका अध्यात्म में जितना महत्व है, उतना ही महत्व सामान्य जीवन में भी है। यदि विद्यार्थी प्रातः जल्दी उठकर अध्ययन कार्य करता है तो उसकी स्मरण शक्ति कई गुना अधिक हो जाती है। हमारे ग्रंथों में जहाँ हज़ारों वर्ष पूर्व इसका उल्लेख था, वहीं वर्तमान में विज्ञान ने भी स्वीकार किया है कि ब्रह्ममुहूर्त में ऑक्सीजन का स्तर सर्वाधिक होता है और इस समय किया गया अध्ययन बाक़ी समय किए गए अध्ययन की तुलना में कहीं ज़्यादा प्रभावशाली होता है। किंतु यदि विद्यार्थी उस समय भी घोड़े बेचकर सो रहा है तो वह जीवन में कदापि सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

अल्पाहारी से तात्पर्य कम भोजन करने से है। विद्यार्थी जीवन में सिर्फ़ उतना ही भोजन ग्राह्य होना चाहिए, जितने भोजन की शरीर को आवश्यकता है। आवश्यकता से अधिक भोजन जहां शरीर को अस्वस्थ करने का कार्य करता है, वहीं शरीर को अधिक ऊर्जा प्रदान करके उसकी वासना को जगाने का कार्य करता है। यदि आवश्यकता के अनुरूप आहार लिया जाये तो शरीर की ज्ञानेंद्रियों के साथ-साथ कर्मेन्द्रियों पर भी नियंत्रण रखा जा सकता है। हमारे ऋषि-मुनि इस बात से परिचित थे। उन्होंने शिक्षार्थी को शिक्षा पूरी होने तक गुरुकुल में रखने का नियम बनाया ताकि उसकी दिनचर्या को आवश्यकतानुकूल नियंत्रित किया जा सके। यदि वह घर में रहेगा तो काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार आदि से प्रभावित होता रहेगा और उसका ध्यान समर्पित रूप से अधिगम पर केंद्रित नहीं हो पाएगा। यदि विद्यार्थी जीवन में उसके चरित्र का सही से विकास नहीं हो पाया तो वह बड़ा होकर जिस भी क्षेत्र में जाएगा वहाँ कुशलता से कार्य नहीं कर पाएगा।उदाहरण के लिए यदि कोई ऐसा व्यक्ति राजा बन जाता है, जिसके चरित्र का विद्यार्थी जीवन में समुचित विकास नहीं हो पाया तो वह प्रजा को भी अंधकार की गर्त में धकेल देगा। शत्रु उसकी कमज़ोरियों का फ़ायदा उठाकर उसके राज्य पर अधिकार जमा लेंगे तथा उसकी प्रजा को प्रताड़ित करेंगे। एक व्यक्ति को विद्यार्थी जीवन में सही संस्कार व मार्गदर्शन न मिल पाने का दुष्परिणाम पूरी प्रजा को भुगतना पड़ेगा। भारतवर्ष के इतिहास में ऐसे कितने ही राजवंश देखे जा सकते हैं जिनके उत्तराधिकारी अयोग्य थे और वो अपने वंश के विनाश का कारण बने। यह बात राजनीति के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों में भी सामान रूप से लागू होती है। इसलिए हमारे पूर्वजों ने यह सुनिश्चित किया कि विद्यार्थी जीवन में ही किसी व्यक्ति के चरित्र का, उसके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण रूप से विकास किया जाये। विद्यार्थी के चरित्र के साथ-साथ विद्यार्थी के स्वास्थ्य का भी विशेष रूप से ध्यान रखा जाता था। शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य का भी ध्यान रखा जाता था। शरीर के स्वस्थ होने पर ही मनुष्य विचारों के आदान-प्रदान में सक्षम होता है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ व सात्विक विचारों का वास होता है।

गुरुकुल में विद्यार्थी के व्यक्तित्व में दया, परोपकार, सेवा व उदारता जैसे भावों को पुष्ट किया गया ताकि वह स्वार्थी न होकर स्वयं के साथ सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की कामना कर सके। 'सर्वे भवंतु सुखिन:' के माध्यम से संसार के सभी प्राणियों के कल्याण की कामना की गई जिससे हमारी 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना दृष्टिगोचर होती है। भारतवर्ष की भ्रातृत्व की भावना महोपनिषद के इस श्लोक से परिलक्षित होती है-

"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।। (4)

अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी परिवार है। सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण उस ईश्वर ने किया है। उसने हमें विभिन्न भू-खंडों पर अनेक रंगों और भाषाओं में विचरने के लिए स्वतंत्र छोड़ रखा है। यही श्लोक हमें भारतीय संसद भवन के प्रवेश द्वार पर भी लिखा दिखायी देता है। जहाँ भारतवर्ष में वैदिककाल में तक्षशिला, केकय, मिथिला, प्रयाग, काशी व काँची जैसे शिक्षा के बड़े केंद्र रहे, वहीं बौद्धकाल में नालंदा, वल्लभी व विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालय पूरे विश्व में ज्ञान का प्रसार करते रहे। इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि भारतवर्ष ने जहाँ अपने ज्ञान को निष्पक्षता के साथ सम्पूर्ण विश्व के साथ साझा किया है, वहीं विश्व से अच्छी बातों को बिना भेदभाव के ग्रहण भी किया है। भारत में विभिन्न राजाओं के राज्यकाल में विदेशों से जो भी यात्री भारत में आये, उनको ससम्मान राजाश्रय प्रदान किया गया। चाहे वह चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में यूनान से आये मैगस्थनीज़ हों, चाहे सम्राट हर्षवर्धन के समय में आये चीनी यात्री ह्यूनसांग हों। यहाँ तक कि एक मुस्लिम आक्रमणकारी महमूद गजनवी के साथ भारत आये अल्बेरूनी तथा फ़िरदौसी तक का भारतवर्ष ने सम्मान किया। इन विद्वानों ने भारत में रहकर यहाँ की मान्यताओं, शिक्षा व्यवस्था, अर्थव्यवस्था तथा यहाँ के नागरिकों के चरित्र का निरीक्षण किया तथा अपनी रचनाओं में इसका वर्णन किया है। उदाहरण के लिए मैगस्थनीज़ ने 'इंडिका' में, अल्बेरूनी ने 'तहक़ीक़-ए-हिन्द' में और फ़िरदौसी ने अपनी रचना 'शाहनामा' में भारतवर्ष की स्मृद्धि, वैभव, कीर्ति तथा यहाँ के निवासियों की चारित्रिक विशेषताओं को उजागर किया है। भारत के नागरिकों की यह 'अतिथि देवो भवः' की भावना इनके उदार चरित्र को दर्शाती है तथा उनका यह उदार चरित्र यहाँ की शिक्षा व्यवस्था का ही परिणाम है।

गुरुकुल व्यवस्था में जहाँ औपचारिक शिक्षा दी जाती थी वहीं जीवन में विभिन्न प्रयोगों द्वारा अनौपचारिक रूप से भी शिक्षा देने का कार्य किया जाता था। भारतवर्ष में विभिन्न दार्शनिक, संत, महात्मा तथा विद्वान ऐसे हुए जिन्होंने पूरे भारत का भ्रमण करके, गाँव-गाँव जाकर अपने उपदेशों के माध्यम से नैतिकता की शिक्षा देने का प्रयास किया। किसी भी संप्रदाय के संत की बात की जाये, उसके केंद्र में हमें नैतिकता की भावना दिखाई देती है। महावीर स्वामी, महात्मा बुद्ध, नानक, कबीर, रैदास आदि अनेक संत ऐसे हुए जिन्होंने भारतवर्ष का भ्रमण करते हुए सामान्य लोगों को सामान्य बोलचाल की भाषा में अध्यात्म के साथ नैतिकता से संबंधित उपदेश भी दिये। इन महापुरुषों ने बहुत ज़्यादा औपचारिक शिक्षा ग्रहण नहीं की थी, फिर भी जहाँ इन्होंने अपनी वाणियों में जहाँ लोगों को कुकृत्यों व कुकर्मों को त्यागने का आह्वान किया, वहीं परोपकार व सदाचार की बातों को अपनाने पर बल दिया। शालीनता से संबंधित कबीरदास जी का एक दोहा बहुत प्रसिद्ध है-

" ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।

औरन को शीतल करे, आपाहु शीतल होय।।"

तात्पर्य यह है कि मनुष्य को एक दूसरे से शालीनता से व्यवहार करना चाहिए। ऐसा करने से उसे स्वयं तो सुख मिलेगा ही, साथ ही वह दूसरों को भी सुख प्रदान करेगा तथा उनसे सम्मान प्राप्त करेगा। ऐसे कितने ही दोहे व शब्द कबीरदास जी ने कहे जिनमें कठोर शब्दों में कुकृत्य करने वाले मनुष्यों को चेतावनी दी गई तथा सज्जन पुरुषों कि प्रशंसा भी की गई। कबीर तथा नानक आदि संतों ने जहाँ नैतिकतापूर्ण उपदेशों से मनुष्य के चरित्र निर्माण का कार्य किया, वहीं तत्कालीन समय में व्याप्त धर्म आधारित संघर्ष का विरोध करके हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का कार्य किया। इनका मत था कि जब तक मनुष्य आपस में ही जाति, धर्म, वर्ग, समुदाय आदि के आधार पर लड़ता रहेगा, तब तक राष्ट्र निर्माण असंभव है।

प्राचीन काल में शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य मनुष्य के चरित्र का विकास करना ही होता था, बाक़ी सभी उद्देश्य गौण होते थे। वर्तमान शिक्षा प्रणाली की भाँति उस समय शिक्षा की कोई एक प्रणाली नहीं थी। भिन्न-भिन्न प्रकार की क्षमता वाले विद्यार्थियों के लिए अधिगम के भिन्न-भिन्न तरीक़े थे। यदि कोई विद्यार्थी स्वयं को बौद्धिक रूप से बिल्कुल असमर्थ महसूस करता था तो उसके लिए भी सीखने की आसान प्रक्रियाएँ थी। पंडित विष्णुशर्मा द्वारा रचित ग्रन्थ 'पंचतंत्र' इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। उन्होंने दक्षिण भारत के एक राजा अमरशक्ति के तीन मंदबुद्धि तथा अहंकारी पुत्रों को विभिन्न प्रकार की मनोरंजक कथाओं के माध्यम से ज्ञान देने का काम किया। उन्होंने उन अल्पबुद्धि राजकुमारों को अपने शिक्षण कौशल व ज्ञान से सिर्फ़ छः महीने में निपुण बना दिया। यह ग्रन्थ इतना प्रसिद्ध हुआ की यूरोप के साथ-साथ ईरान तथा जर्मन में भी अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद हुए। इस ग्रन्थ में जो भी कथाएँ दी गई उनके अंत में एक शिक्षा दी होती थी जिसका उद्देश्य मनुष्य के चरित्र का विकास करना था। इसी प्रकार का एक उदाहरण भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' में देखने को मिलता है जिसमें महाप्रभु रत्नाकर के दो शिष्य श्वेतांक तथा बीजगुप्त ने जब उनसे पूछा था कि पाप और पुण्य क्या है ? तो उन्होंने उन दोनों को उसी क्षण उत्तर न देकर एक वर्ष के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों पर भेजा था। एक वर्ष में उन्होंने अनुभव से जो सीखा उसी से निष्कर्ष निकलकर महाप्रभु ने उन्हें उनके प्रश्न का उत्तर दिया। यदि वे चाहते तो उसी समय भी उस प्रश्न का उत्तर दे सकते थे, किंतु उन्होंने व्यावहारिक प्रयोग द्वारा उन्हें समझाना उचित समझा। भारतवर्ष का इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है जिसमें मनुष्य के चरित्र का विकास करने के लिए आचार्यों ने भिन्न-भिन्न तरीक़े अपनाए। ग्रामीण क्षेत्रों में वर्तमान समय में भी दादी-नानी द्वारा बच्चों को शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनायी जाती हैं जिनसे शिक्षा प्राप्त कर

बालक अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों में ही आदर्श विचारों से युक्त हो जाता है। यही आदर्श मूल्य भविष्य में उसके चरित्र निर्माण का कार्य करते हैं।

चरित्र निर्माण व राष्ट्र निर्माण में नारी शक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्राचीन काल में विश्वरा, अपाला, शाश्वती, लोपामुद्रा, गार्गी आदि विदुषियाँ हुई जिन्होंने शास्त्रार्थ में कई बड़े-बड़े विद्वानों को मात दी और जब शस्त्र उठाकर राष्ट्र की रक्षा करने की बात आयी, उसकी एकता-अखंडता को बचाने की बात आयी तो भारतवर्ष की वीरांगनाएँ शस्त्र लेकर युद्धभूमि में भी कूद पड़ी। भारत में जितने भी महापुरुष व वीर पुरुष हुए हैं, उनके अतीत में झाँककर देखें तो ज्ञात होगा कि राष्ट्र प्रेम व देश प्रेम की प्रेरणा उन्हें अपनी माँ से प्राप्त हुई। वीर शिवाजी इतने महान योद्धा बने, इसमें सबसे महत्वपूर्ण योगदान उनकी माता जीजाबाई का था। बचपन में माता जीजाबाई उन्हें पहाड़ी की ओट से युद्ध देखने भेजती थी तथा अनेक प्रकार के वीर व महापुरुषों के दृष्टांत सुनकर उनके अंदर देशभक्ति की भावना भरती थी। चरित्र निर्माण के पीछे सबसे बड़ा हाथ माँ का होता है। उसके बाद गुरु का स्थान आता है। एक मनुष्य की पहली गुरु माँ होती है। यदि माँ व गुरु से बालक को एक संस्कार मिल जायें तो भविष्य में उसके उदार चरित्र बनने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। अपने पूरे जीवन में वह जो भी सत्कर्म करता है, उसके पीछे कहीं-न-कहीं बचपन में माँ व गुरु से मिले इन्हीं संस्कारों का हाथ होता है।

भारतीय संस्कृति में एक बात प्रचलित रही है कि 'व्यक्ति जैसा सोचता है, वैसा ही बन जाता है।' भारतीय ज्ञान प्रणाली ने यह सुनिश्चित किया कि मनुष्य सैदव उदात्त विचारों का ही स्मरण करे। नीचता से संबंधित विचार उसके नज़दीक भी ना आयें। यदि व्यक्ति स्वयं को दीन-हीन, धृष्ट, कमजोर, नाचीज़ ही सोचता रहेगा तो उसका यह सोचना उसकी मनःस्थिति को प्रभावित करेगा और एक दिन वह वैसा ही बन जाएगा किंतु इसके विपरीत यदि वह स्वयं को श्रेष्ठ, बुद्धिमान, शक्तिशाली, उदार परोपकारी आदि समझेगा तो उसकी मनःस्थिति उसको इन गुणों को धारण करने के लिए उत्तेजित करेगी। वह अपने व्यक्तित्व में इन गुणों को शामिल करने के लिए प्रयत्न करेगा और निश्चित रूप से एक दिन सफलता भी प्राप्त कर लेगा।

प्राचीन उपनिषदों में वर्णित महावक्य "अहं ब्रह्माऽस्मि' (6) इसी सकारात्मकता का प्रतीक है यह मनुष्य के भीतर एक अभिप्रेरण शक्ति का संचार करता है। उसको स्मरण करवाता है कि उसके मनुष्य होने में इतनी सार्थकता है कि वह ईश्वरत्व को भी प्राप्त कर सकता है। स्वयं के ईश्वर होने से अधिक सकारात्मक और क्या सोचा जा सकता है। विभिन्न शुभ कर्म व धार्मिक संस्कारों को प्रारंभ करते समय ऐसे ही अभिप्रेरणा व ऊर्जा से भरे वैदिक मंत्रों, ऋचाओं व श्लोकों का उच्चारण किया जाता था ताकि मनुष्य के चरित्र को सकारात्मक ऊर्जा

से भरा जा सके। किसी भी धार्मिक पुस्तक की रचना करते समय उसके प्रथम पृष्ठ पर एक श्लोक मुद्रित होता था-

"ॐ असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।

मृत्योर्मामृतं गमय ॥ ॐ शान्ति शान्ति शान्तिः ॥" (7)

अर्थात् इस पुस्तक की अध्ययन सामग्री मुझे असत्य से निकलकर सत्य की और लेकर जाने वाली हो। अंधकार से निकालकर प्रकाश की और लेकर जाने वाली हो। मैं मृत्यु को नहीं बल्कि ज्ञान रूपी अमृत को पाऊँ। वर्तमान समय में भी 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद' की पुस्तकों में प्रथम पृष्ठ पर यह श्लोक मुद्रित है जो विद्यालय स्तर पर विद्यार्थियों को पढ़ायी जाती है। विभिन्न राज्यों के शिक्षा बोर्डों ने अपने लोगो में ध्येय वाक्य के रूप में इसकी एक पंक्ति 'तमसो मा ज्योतिर्गम्य' तथा केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने 'असतो मा सद्गमय' को अपने लोगो में छपवाया हुआ है। इन सबका एकमात्र उद्देश्य यही था कि विद्यार्थी सकारात्मक सोचें तथा उसका चरित्र भी सकारात्मक विचारों को धारण करने वाला बने। स्वामी विवेकानंद ने इस विषय में कहा था- "अगर तुम सोचो कि मैं कुछ हूँ, मुझमें शक्ति है, तो सचमुच तुममें शक्ति आ जाएगी। यह एक महान सत्य है जिसका तुम्हें स्मरण करना चाहिए। हम उस सर्वशक्तिमान प्रभु की संतान हैं- उस अनंत ब्रह्मग्नि की चिंगारियाँ हैं! हम नाचीज़ कैसे हो सकते हैं ? हम सब कुछ हैं, सब कुछ करने को तैयार हैं और सब कुछ कर सकते हैं। (8)

वर्तमान में विद्यार्थियों के चिरत्र व उच्चदर्श इसलिए नष्ट हो रहे हैं क्योंकि प्रारंभ में ही इनके जीवन निर्माण की पद्धति में दोष है। जिस समय विद्यार्थी को अपने जीवन में महापुरुषों के उच्चाचदर्शों को आत्मसात् करना था, उनका वो समय व्यर्थ के सांसारिक आकर्षणों में व्यतीत हो रहा है। अनुशासनहीन व दिशाहीन विद्यार्थी से उच्च चरित्र की अपेक्षा नहीं की जा सकती। और विद्यार्थियों के चरित्र के इस पतन के लिए अध्यापक व विद्यार्थी दोनों ही उत्तरदायी न होकर वर्तमान शिक्षा प्रणाली उत्तरदायी है। वर्तमान समय में विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा नहीं दी जा रही। हो सकता है विद्यार्थी भविष्य में डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, उद्योगपति आदि बन जाये, किंतु वह चरित्रवान मनुष्य कभी नहीं बन पाएगा। क्योंकि मनुष्य का चरित्र ही उसे श्रेष्ठ मनुष्य बनाता है। उदात्त चारित्रिक विशेषताओं से रहित व्यक्ति की शास्त्रों में निंदा की गई है-

"येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।

ते मृत्युलोके भुवि भारभूता, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।" (9)

अर्थात् जिस व्यक्ति ने किसी भी प्रकार से विद्याध्ययन नहीं किया है, न ही उसने व्रत और तप किया है, थोड़ा बहुत अन्न-वस्त्र-धन या विद्या दान नहीं दिया। न उसमे किसी भी प्रकार का ज्ञान है, न वो आचरणशील है, न गुणवान है और न ही उसने धर्म किया है। ऐसे मनुष्य इस पृथ्वी पर भार होते हैं। वो मनुष्य रूप में होते हुए भी पशु के समान जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार के चरित्रहीन व्यक्ति से राष्ट्र निर्माण की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

सभी व्यक्ति कहते हैं कि राष्ट्र हमारा है। जब सभी लोग कहते हैं कि राष्ट्र हमारा है, तब सभी लोग मैं, तुम और वह में अपनी-अपनी तरफ़ राष्ट्र को घसीटने का प्रयास करते हैं। पुरुष इस समाज की इकाई है। इन दोनों के मिलन से परिवार बनता है। परिवार समूहों का निर्माण करते हैं और समूहों के संगठन से समाज बनता है। समाज द्वारा ही राष्ट्र का निर्माण होता है। जब लोग अपने व्याख्यानों में कहते हैं कि राष्ट्र मैं हूँ, राष्ट्र तुम हो, राष्ट्र वो है तो वो सिर्फ़ और सिर्फ़ अपने अज्ञानता को दर्शाते हैं। सत्य तो ये है कि मैं राष्ट्र का हूँ, तुम राष्ट्र के हो, हम सभी इस राष्ट्र के हैं। राष्ट्र हमारा नहीं है बल्कि हम इस राष्ट्र के हैं। जब प्रत्येक व्यक्ति मैं और तुम के भेदभाव को मिटाकर हम के बारे में सोचने लगेगा, तभी हमारा देश राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बंध पाएगा।

संदर्भ:

1. महाभारत पंचम खंड, गीताप्रेस गोरखपुर, अध्याय 180, श्लोक संख्या 12

2. ऋग्वेद संहिता, चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, दशम् मंडल, सूक्त 10, मंत्र संख्या 191

3. ऋग्वेद संहिता, चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, प्रथम मंडल, सूक्त 89 मंत्र संख्या 1

4. तैत्तिरीयोपनिषद, गीताप्रेस गोरखपुर, प्रथम संस्करण, शिक्षावली, एकादश अनुवादक, पृष्ठ संख्या 58

5. महोपनिषद, श्री हिन्दू धर्म वैदिक शिक्षा फ़ाउण्डेशन, प्रथम अध्याय, चतुर्थ ब्राह्मण, श्लोक संख्या 20

6.बृहदारण्यक उपनिषद, श्री हिन्दू धर्म वैदिक शिक्षा फ़ाउण्डेशन, प्रथम अध्याय, चतुर्थ ब्राह्मण, श्लोक संख्या 20

7. बृहदारण्यक उपनिषद, श्री हिन्दू धर्म वैदिक शिक्षा फ़ाउण्डेशन, प्रथम अध्याय, श्लोक संख्या 28

8. शिक्षा, स्वामी विवेकानंद, श्री राम कृष्ण आश्रम, नागपुर, तृतीय संस्करण, पृष्ठ संख्या 16

9. नीतिशतकम्, डॉ. राजेश्वरशास्त्री मुसलगाँवकर, चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी, श्लोक संख्या 13

https://doi.org/10.81125/shodhritu.20255334902

PEER *Reviewed & Refereed* **JOURNAL**

ISSUE-39 VOLUME-6 IMPACT FACTOR- IIFS-9
ISSN-2454-6283 January-March, 2025

AN INTERNATIONAL MULTI-DISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL

(Cosmos- 7019-4.649) Scopus Impact Factor (1.25) Thomson Reuters Edwin Impact Factor-2.88 ETC

शोध-ऋतु

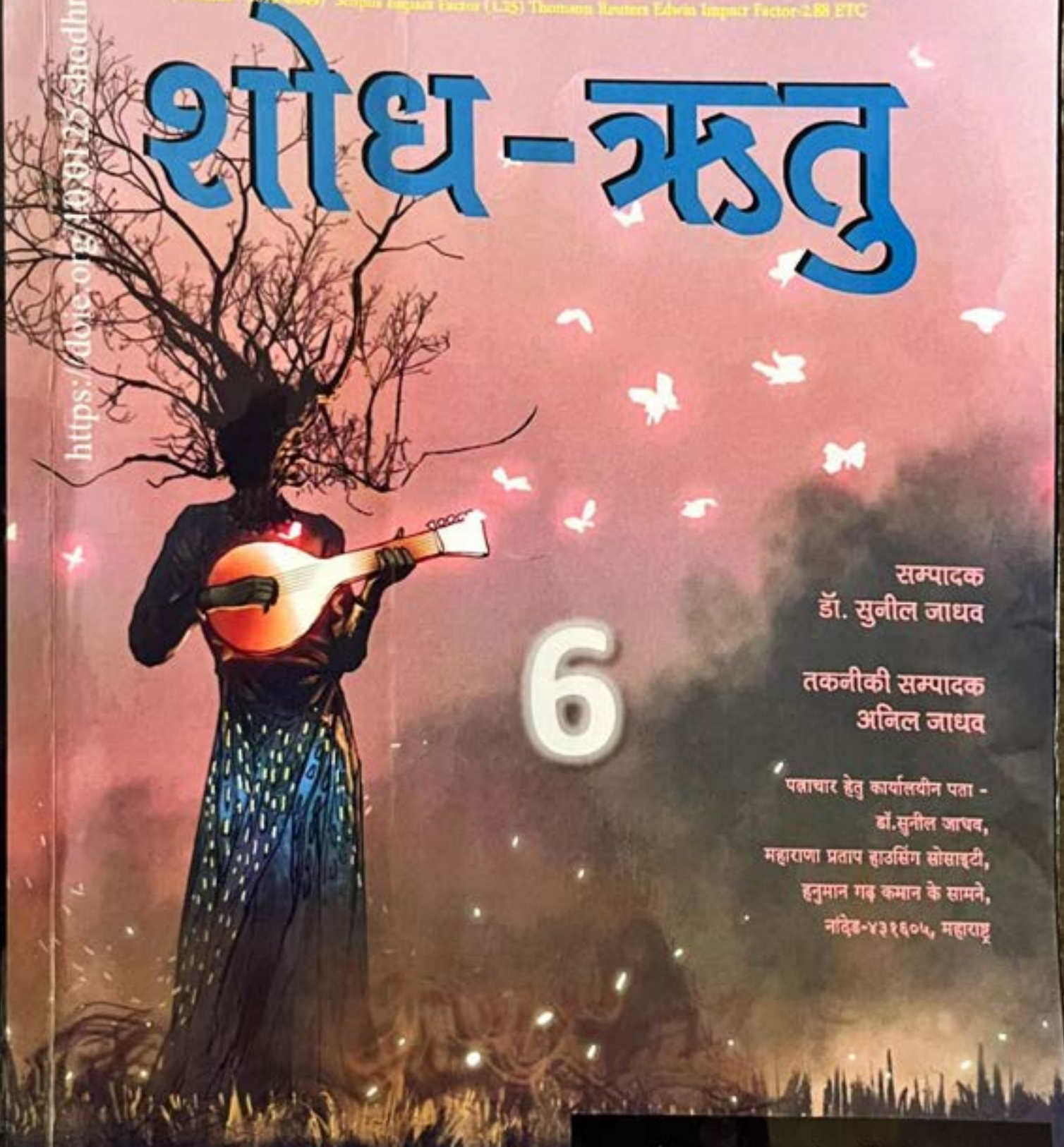

6

सम्पादक
डॉ. सुनील जाधव

तकनीकी सम्पादक
अनिल जाधव

पत्राचार हेतु कार्यालयीन पता -
डॉ.सुनील जाधव,
महाराणा प्रताप हाउसिंग सोसाइटी,
हनुमान गढ़ कमान के सामने,
नांदेड-४३१६०५, महाराष्ट्र

web:- www.shodhritu.com
Email - shodhrityu78@yahoo.com
WhatsApp 9405384672

शोध-ऋतु

Shodh-Rityu तिमाही शोध–पत्रिका

Open Transparent PEER Reviewed & Refereed JOURNAL

ISSUE-39 | VOL- 6 | IIFS Impact-9 | ISSN-2454-6283 | Jan-March -2025|

(Copernicus: 53.99) ***(Cosmos-4.649)***

DOI Number - https://doie.org/10.0125/shodhritu.2025534902

AN INTERNATIONAL MULTI-DISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL

सम्पादक
डॉ.सुनील जाधव, नांदेड
9405384672

तकनीकी सम्पादक
अनिल जाधव, मुंबई

पत्राचार हेतु पता–
महाराणा प्रताप हाउसिंग सोसाइटी, हनुमान गढ़ कमान के सामने, नांदेड–431605

13.हिंदी उपन्यासों में चित्रित किसान : कृषक से मजदूर बनने की दिशा में (इक्कीसवीं सदी के संदर्भ में).....36
–[1]गौरव सिंह, [2]प्रो. एस. वी. एस. एस. नारायण राजु 36
14.प्राकृतिक आपदाओं के प्रकार और उनके मानव समुदायों पर प्रभाव.....38
–प्रा.डॉ.अनिलकुमार रामधन राठोड.....38
15.समकालीन समाज की यथार्थ स्थिति डा जय शंकर शुक्ल की कहानियों के विशेष संदर्भ में 41
–डॉ0रोली द्विवेदी 41
16.जायसी के काव्य में रहस्यवाद.....43
–प्रा.विठ्ठल केशवराव टेकाले 43
17.भक्ति आंदोलन में गुरु जम्भेश्वर जी का योगदान.....45
–सचिन गौतम.....45
18.जम्मू–कश्मीर में हिंदी साहित्य: चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ 48
–कुमार विश्वमंगल 48
19.जसिंता केरकेट्टा के काव्य में जनजागृति के स्वर.....50
–[1]मृदुल जोशी, [2]आंचल देवी 50
20.नाटककार, निर्देशक, अभिनेता के रूप में दया प्रकाश सिन्हा 52
–[1]सांवर मल सैनी, [2]डॉ.दीपिका विजयवर्गीय 52
21.अर्थशास्त्र के क्षेत्र में कौशल विकास के अवसर चुनौतियां एवं सरकारी योजनाओं का प्रभाव 54
–[1]कु. आयुषी गोल्हानी, [2]डॉ. कुमुद श्रीवास्तव 54
22.रामस्नेही वाणी साहित्य की प्रासंगिकता 56
–[1]नर सिंह, [2]डॉ0 दीपिका विजयवर्गीय 56
23.हिंदी के गद्य विधा में किन्नर केंद्रीत उपन्यास एवं आत्मकथा का विकास 58
–[1]बॉबी झा, [2]डॉ.ज्योति श्रीवास्तव 58
24.हिन्दी के वैश्विक परिदृश्य में प्रवासी साहित्यकारों का योगदान.....61
–डॉ.शिवम् तिवारी.....61
25.अनाथ बालकों एवं बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन 64
–शोभा कुमारी 64

ISSN 2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

ने जीवात्मा द्वारा के परमात्मा के प्रति उसके पुण्य–प्रेम एवं अटूट भक्ति के द्वारा उसके साक्षात्कार का ही चित्रण किया है। यह चित्रण सुफी भावना के अनुरूप ही है। इसके सन्दर्भ में निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–सुनतहि राजा गा मुरझाई। जानौं लहरि सूरुज कै आई।।/अहूठ हाथ तन सरवर। कंवल तेहि माँह।।/विरह भँवर होइ भाँवरि लेइ। खिन खिन जीव हिलोरहि लेई।।/खिनही निसास बढि जीऊ जाइ। खिनही उठे बिससे बौराई।/खिनही पीत खिन होई सुख सेता। खिनहिं चेत खिन होई अचेता।। जिस प्रकार मूसा तूर पर्वत पर खुदा के असीम नूर को देखकर मूर्छित हो गया था उसी प्रकार रत्नसेन ब्रह्मरूपिणी पद्मावती के असीम सौन्दर्य को देखकर अचेत हो जाता है। 'पद्मावत' का यह प्रसंग भक्त द्वारा अपने आराध्य का साक्षात्कार कर बेसुध होने का चित्रण है। 'पद्मावत' की निम्न पंक्तियाँ इस सन्दर्भ की पुष्टि करती है–आवत जग बालक जस रोवा। उठा रोई का ज्ञान सो खोवा।।/हौं तो अहा अमरपुर जहाँ। इहाँ मरनपुर आउ कहाँ।।/केई उपकार मरन कर दिन्हा। सकति हँकारि जीव हरि लिन्हा।। सूफियों के प्रेममूलक रहस्यवाद में प्रियतम के वियोग के कारण विरह की स्थिति का विशेष महत्व है। जायसी ने इस विरह की स्थिति की मार्मिक अभिव्यंजना अनेक स्थलों पर की है।

इसी विरह की अग्नि में स्वर्ग, पाताल, सूर्य, तारे आदि दग्ध होते रहते हैं। इसी विरह की अग्नि में जल–जलकर प्रकृति के सभी उपादान जैसे–अग्नि, पवन आदि तथा सभी जीवात्माएँ उस परम सत्ता के मिलन के लिए व्याकुल दिखाई देते हैं–विरह की आगि सूर जटि काँपा। रातिहिं दिवस जरै ओहि तापा।।/औ सब नखत तराई जरहीं। टूटहि लक धरति महँ परहीं।।/धाई जो बाजा कै मन साधा। मारा चक्र भएउ दुइ आधा।।/पवन जाइ तहँ पहुँचै चहा। मारा तैस लोटि भुई रहा।। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जायसी के 'पद्मावत' में रहस्यवाद की अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर उत्कृष्ट रूप में हुई है।

सन्दर्भ– 01) सम्पा. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, विनय प्रकाशन, आवास विकास, हंसपुर, कानपुर–21

17.भक्ति आंदोलन में गुरु जम्भेश्वर जी का योगदान

–सचिन गौतम
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार

भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहा गया क्योंकि इस काल में लिखा गया साहित्य भाषा और शिल्प की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती वह परवर्ती साहित्य से कहीं अधिक श्रेष्ठ था। कई महान संत कवियों ने अपने उदात्त विचारों से साहित्य की इस भूमि को सींचा था। भक्तिकाल का साहित्य पहली बार जनसाधारण का साहित्य बनने में सफल हो सका। इससे पूर्व लौकिक साहित्य की अगर बात करें तो वह राजाओं की प्रशंसा पर केंद्रित था और एक सामान्य व्यक्ति को उसमें पूर्णतः उपेक्षित किया गया था। न ही तो उसमें जनसाधारण की समस्याओं को कहीं उठाया गया और न ही कभी उनका समाधान करने का प्रयास किया गया। पूर्ववर्ती आध्यात्मिक साहित्य की अगर बात करें तो उसका भक्ति साहित्य भी उतना सहज नहीं है कि आम आदमी का साहित्य बन सके। भक्तिकाल का साहित्य इन दोनों ही दृष्टियों से श्रेष्ठ सिद्ध हुआ। इसमें जहाँ जनसाधारण की समस्याओं व कुरीतियों पर प्रहार किया गया वहीं उन्हें दूर करने का प्रयास भी किया गया। इस काल के विभिन्न संतों व महापुरुषों ने भक्ति का जो सहज मार्ग प्रशस्त किया वह न केवल उस काल में जनसाधारण के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुआ बल्कि सैकड़ों वर्ष बीत जाने के बाद वर्तमान समय में भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए हैं। भारत में जिस समय भक्ति आन्दोलन चल रहा था उसी समय राजस्थान में एक बड़े महान संत हुए जिन्हें गुरु जम्भेश्वर या जम्भोजी के नाम से जाना गया। हिन्दू कैलेंडर के अनुसार इनका जन्म विक्रमी संवत् 1508 में भाद्रपद अष्टमी को राजस्थान के पीपासर में हुआ माना जाता है। इनके पिताजी का नाम लोहट जी तथा माता जी का नाम हंसा देवी था। विक्रमी संवत् 1542 में कार्तिक मास की कृष्ण अष्टमी को 'समराथल' (बीकानेर) में इन्होंने बिश्नोई पंथ का प्रवर्तन किया। इन्होनें संप्रदाय के सफल व सुचारु रूप से संचालन के लिए 29 नियमों की एक आचार संहिता बनायी। उन नियमों का पालन करने वाले लोग बिश्नोई कहलाए। गुरु जम्भेश्वर जी के उपदेश व शब्दवाणी 'जम्भवाणी' नामक रचना संग्रह के अंतर्गत संग्रहित हैं। भक्ति आन्दोलन में कबीर, रैदास आदि कवियों ने पहला प्रहार ज्ञान व भक्ति के उपदेशों की पारंपरिक भाषा पर किया था। उन्होंने अपने उपदेश कलिष्ट भाषा में न देकर आम बोलचाल की भाषा में दिए ताकि साधारण से साधारण लोग भी उन वाणियों व उपदेशों से लाभान्वित हो सकें। वही दृष्टिकोण गुरु जम्भेश्वर जी का दिखाई देता है। इन्होंने अपने उपदेश ठेठ मरुभाषा में दिये।

भक्ति काल में लगभग सभी संतों ने अपने उपदेशों व वाणियों में एक बात मुख्य रूप से केंद्र में रखी, वह थी आचरण की

शुद्धता। गुरु जम्भेश्वर जी की शब्द वाणी से पता चलता है कि इन्होंने अपने उपदेशों में जीवन में सादगी व कर्मठता पर विशेष बल दिया। भारत में भक्ति आंदोलन जाति व्यवस्था, सांप्रदायिकता, बाह्याडंबर, मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, जीवहत्या आदि कुरीतियों के विरोध के परिणामस्वरूप उभरा था। कबीरदास तथा रैदास आदि संतों ने स्वयं जाति उत्पीड़न के दंश को झेला था। इसलिए उनकी वाणियों में जाति उत्पीड़न की पीड़ा व उस गैरबराबरी की व्यवस्था की प्रति विद्रोह दिखाई देता है। गुरु जंभेश्वर जी ने भी उस समय समाज में प्रचलित जाति व्यस्था का घोर विरोध किया। हिंदू समाज अनेक जातियों तथा उपजातियों में बँटा हुआ था। उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के लोगों के साथ छूआछूत व भेदभाव किया जाता था। जाति आधारित ऊँच–नीच का विरोध करते हुए वे कहते हैं –"उत्तम कुलि का उत्तम होयबा, कारण किरिया सारू"[1] अर्थात् जो व्यक्ति उत्तम कुल में जन्म लेकर भी शास्त्रों में बताए गए धर्म का पालन नहीं करता, वह व्यक्ति केवल उत्तम कुल में जन्म लेने के कारण बड़ा नहीं हो जाता। केवल उच्च जाति में जन्म लेने के कारण उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। वह तो केवल उत्तम गुणों व अच्छे कर्मों से ही हो सकती है।गुरु जंभेश्वर जी ने कहा है –"उतपति हिंदू जरणा जोगी/किरिया ब्राह्मण दिल दरवेसां।।/उन मुन मुल्ला अकल मिसलमानी"[2] अर्थात् हिंदू स्वयं को जन्म से ही श्रेष्ठ समझते हैं जबकि जन्म से श्रेष्ठता का कोई प्राकृतिक संबंध नहीं है। जैसे हिंदुओं का जन्म हुआ, उसी प्रक्रिया से अन्य लोगों का जन्म हुआ। सामाजिक समानता स्थापित करने में गुरु जम्भेश्वर जी के सिद्धांतों में भी भक्ति आंदोलन की वही परंपरा दृष्टिगोचर होती है जिस परंपरा में कबीर कहते हैं–"जो तूं ब्रह्मण, ब्राह्मणी का जाया !/आन बाट काहे नहीं आया"[3]

उच्च जाति के आधार पर स्वयं को श्रेष्ठ समझने वालों को गुरु जंभेश्वर जी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं–"दीन गुमान करैलो खाली/ज्यों कण घातै, घुण हाणि।"[4] अर्थात् जिस प्रकार घुन अनाज के दाने को भीतर से खोखला कर देता है। उसी प्रकार मनुष्य भी अगर ईश्वर की साधना व भक्ति को छोड़कर स्वयं को श्रेष्ठ कुल, जाति और धर्म का बतलाकर अहंकार करता है तो उसका वह अहंकार उसे पतन की ओर ले जाएगा। गुरु जम्भेश्वर जी की समाज को सबसे बड़ी देन यह थी कि उन्होने प्रत्येक जाति व वर्ग के लोगों को बिना किसी भी प्रकार का भेद किये आत्मोथान का मार्ग दिखाया। तत्कालीन समय में मुस्लिम शासन था तथा सांप्रदायिकता अपने चरम पर थी। लोग धर्म के नाम पर आपस में लड़ रहे थे। हिंदुओं व मुसलमानों में धर्म के नाम पर हिंसा फैली हुई थी। दोनों ही लोग धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझे बिना ही व्यर्थ में एक दूसरे के शत्रु बने हुए थे। भक्ति आन्दोलन में लगभग सभी संतों ने धार्मिक सहिष्णुता व सौहार्द और भाईचारे की भावना को स्थापित करने का प्रयास किया। गुरु जम्भेश्वर जी ने भी ईश्वर व अल्लाह में कोई भेद नहीं माना। उन्होने ईश्वर को सच्चिदानंद, स्वयं ज्योति स्वरूप, सर्वगुणसंपन्न तथा सम्पूर्ण जगत का संचालन करने वाला माना है। उन्होंने कहा कि जो स्वरूप ईश्वर का है वही स्वरूप अल्लाह का है। दोनों भिन्न नहीं हैं।"अल्लाह अलेख अडाल अजोनि सिंभू"[5] अर्थात अल्लाह अदृश्य है। वह मनुष्य की पाँच ज्ञानेन्द्रियों से परे है। वह पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के विषय क्षेत्र से परे है। अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध से परे है। वह अंडाल अर्थात् अखंड है। वह स्वयंभू है अर्थात् उसके कोई माता–पिता नहीं हैं। ईश्वर के इसी निराकार रूप का वर्णन भक्तिकाल के संत कवियों ने किया है और यही निराकार स्वरूप भारतीय दर्शन में वर्णित है।

भक्ति आंदोलन का मुख्य आधार सामाजिक असमानता तथा बाह्याडंबरों का विरोध करना था। लगभग सभी संतों की वाणी में बाह्याडांबरों का त्याग करके के शुद्ध आचरण वह सदाचार पूर्ण जीवन जीने पर बल दिया गया है। तत्कालीन समय में हिन्दुओं वह मुसलमानों दोनों में ही विभिन्न प्रकार के कर्मकांड व पाखंड प्रचलित थे। इस्लाम में खुदा के नाम पर हज करना, मक्का मदीना की यात्रा करना, दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ना, मज़हब के नाम पर जीव हत्या करना आदि कई प्रकार के पाखंड प्रचलित थे। इस्लाम में व्याप्त इन बाह्याडांबरों के बारे में गुरु जम्भेश्वर जी ने कहा कि जो व्यक्ति अल्लाह को नहीं जानता वह पश्चिम दिशा में अपना मुँह करके उलबंग तो देता है परंतु मन में तनिक भी दया का भाव नहीं रखता, वह व्यक्ति कभी भी सच्चा मुसलमान नहीं हो सकता–"दिल साबत हज काबौ नेडै क्या उलबंग पुकारो,भाई नाऊं बलद पियारो ताके गले करद क्यूं सारो।"[6] यदि हमारा मन और ह्रदय शुद्ध है तो हमें उलबंग देने की आवश्यकता नहीं है। धर्म के नाम पर हो रही जीवा हिंसा पर उन्होंने कहा कि पशुओं का दूध पीना तो ठीक है लेकिन उनकी हत्या करने जैसा नीच कर्म करके नमाज़ पढ़ना व्यर्थ है–"सुणरे काजी सुण रे मुल्ला/सुणरे बकर कसाई।"[7] उन्होनें कहा कि जीव हत्या जैसा नीच कर्म करके खुदा की इबादत करना व्यर्थ है क्योंकि खुदा की इबादत तो प्राणीमात्र का भला करने का संदेश देती है–"विणि परच बाद निवाज गुजारो"[8] इस प्रकार गुरु जम्भेश्वर जी ने मुसलमानों में प्रचलित कुरीतियों व कुप्रथाओं का विरोध किया व उन्हें कुरान व नमाज़ का सही अर्थ समझाया। जिस प्रकार उन्होंने मुसलमानों में प्रचलित पाखंडों का विरोध किया उसी प्रकार हिंदुओं में प्रचलित मूर्तिपूजा जैसे बाह्य आडंबरों का विरोध किया। उन्होंने विष्णु को देवतुल्य व पूजनीय माना। विभिन्न देवी देवताओं की मूर्ति पूजा को व्यर्थ मानते हुए उन्होंने कहा कि –"हर पर हरि की आण न मानी, रे भोला भूलि न जपी महमाई।/पाहण प्रीति पिटा करि प्राणी, गुर विणि मुक्त न जाई।"

गुरु जम्भेश्वर जी ने चमत्कार, सिद्धि तथा बाहरी दिखावा करने वालों को कलाबाज़ कहा है। इनके अनुसार जो गृह त्याग करते हैं, वस्त्रों का त्याग करके स्वयं के शरीर को भाँति–भाँति के कष्ट देते हैं उन्हें कभी भी ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती–"ताथ नागे जोग न

पायो"[9]यज्ञ के अवसर पर दी जाने वाली पशु–बलि या जीविका निर्वाहन के लिए की जाने वाली जीव हत्या का इन्होंने विरोध किया। इन्होंने कहा कि निर्दोष जीवों कि हत्या करने से ईश्वर कभी भी प्रसन्न नहीं होते –"नागड भागड़ भूला महियल।/जीव हत मड खाईलो।।"[10] इसी प्रकार ध्यान का दिखावा करने वाले व योग की विभिन्न मुद्राओं में ध्यान लगाने वाले व्यक्ति को इन्होंने योगी नहीं माना बल्कि झूठा, कपटी व बेईमान माना है। इन्होंने कहा कि ईश्वर भक्ति का मार्ग बहुत सरल है परंतु उस पर कोई विरला व्यक्ति ही चल सकता है–"आसण बैसण कूड़ कपट को को को चीन्हत अवजू वाट/अवजू वाटे जे नर भया काची काया छोड़ि कवलासे गया।"[11]उन्होने कहा कि जटा बढ़ाकर बैठना, भगवा रंग के वस्त्र पहन लेना, मस्तक पर तिलक लगा लेना, सिद्धियों का प्रदर्शन करना तथा माला जपने को योग नहीं कहा जा सकता–"जोगी, जंगम, नाथ, दिगंबर, संन्यासी, ब्राह्मण,/ब्रह्मचारी मनहठ पढ़िया पंडित/काजी मुल्ला खैलें आप दुवारी।/निश्चय कायूं बांयो होयसै, जे गुरु विणि खेल पसारी।"[12] इनके अनुसार बह्याडंबरों का त्याग करके सदाचार का मार्ग अपनाकर ही परब्रह्म ईश्वर को जाना जा सकता है तथा सदाचरण करना एक योगी का परम कर्तव्य है–"दोय मन दोय दिल सीवी न कंथा.../पारब्रह्म की सुधि न जाणि, तो नागे जोग पाया।"[13]

सदाचार का मार्ग नहीं समझने वाले व्यक्ति सिर मुंडवा लेते हैं, नग्नावस्था में रहते हैं तथा अनेक प्रकार के बाह्याडम्बर रचते हैं। ऐसे गुरु व शिष्य दोनों पागल कुत्तों के समान भटकते हैं–"टूका पाया मगर मचाया, ज्यों हडियाया कुत्ता/जोग जुगत की सार न जाणी, मूंड मुंड़ाया बिगूता/चेला गुरु अपरचै खीणा मरता मोक्ष न पायो।"[14] जिस प्रकार भक्तिकाल के अन्य संत कवियों ने ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में गुरु का महत्वपूर्ण स्थान माना है उसी प्रकार गुरु जम्भेश्वर जी भी कहते हैं कि गुरु ही माया रूपी संसार सागर में फँसे व्यक्ति को मार्ग दिखाता है। गुरु ही परब्रह्म परमेश्वर तक पहुँचने में जीव की सहायता करता है। गुरु के बिना कोई भी व्यक्ति इस संसार सागर को पार नहीं कर सकता –"गुरु न चीन्हू पंथ न पायो।/अहल गई जमवारूं।"[15] गुरु के बिना सत्य का मार्ग नहीं मिलता, गुरु के बिना मानुष जन्म वृथा है। गुरु जम्भेश्वर जी भी मानते हैं कि किसी कथन से गुरू का महत्व बताया ही नहीं जा सकता। व्यक्ति को अपने कर्मों के कारण ही जीवन में सुख–दुख की प्राप्ति होती है। गुरु के कारण ही व्यक्ति अमरतत्व को प्राप्त होता है और सांसारिक सुख–दुःखों से ऊपर उठ जाता है –"सतगुर मिलियो सत पथ ज पायो"[16]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गुरु जम्भेश्वर जी मध्यकालीन भारत के निर्गुण सन्त परंपरा के महान संत थे। वे कबीर, नानक, दादू, रैदास आदि के समान ही उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन के अग्रणी संत थे। समाज में व्याप्त कुरीतियों व बाह्याडंबरों को त्यागकर सदाचारपूर्ण जीवन जीने का जो उपदेश उन्होंने दिया उससे न केवल भक्ति आंदोलन अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हुआ बल्कि वे उपदेश आज भी सम्पूर्ण मानव जाति को सत्य का मार्ग दिखा रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ – (1)माहेश्वरी, डॉ. हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (जम्भवाणी के पाठ संपादन सहित) भाग प्रथम, बी. आर. पब्लिकेशन कोलकत्ता 1969, पृष्ठ संख्या 328 (2)माहेश्वरी, डॉ. हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (जम्भवाणी के पाठ संपादन सहित) भाग प्रथम, बी. आर. पब्लिकेशन कोलकत्ता 1969, पृष्ठ संख्या 309 (3)कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुन्दर दास, तक्षशिला प्रकाशन, सं. 2019 (4)माहेश्वरी, डॉ. हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (जम्भवाणी के पाठ संपादन सहित) भाग प्रथम, बी. आर. पब्लिकेशन कोलकत्ता 1969, पृष्ठ संख्या 379 (5)संगोष्ठी वाणी (मासिक पत्रिका), अंक 2, जयपुर, अक्तूबर 1978, पृष्ठ संख्या 9 (6)माहेश्वरी, डॉ.हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (जम्भवाणी के पाठ संपादन सहित) भाग प्रथम, बी. आर. पब्लिकेशन कोलकत्ता 1969, पृष्ठ संख्या 311 (7)माहेश्वरी, डॉ. हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (जम्भवाणी के पाठ संपादन सहित) भाग प्रथम, बी. आर. पब्लिकेशन कोलकत्ता 1969, पृष्ठ संख्या 311 (8)माहेश्वरी, डॉ. हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (जम्भवाणी के पाठ संपादन सहित) भाग प्रथम, बी. आर. पब्लिकेशन कोलकत्ता 1969, पृष्ठ संख्या 313 (9)माहेश्वरी, डॉ. हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (जम्भवाणी के पाठ संपादन सहित) भाग प्रथम, बी.आर. पब्लिकेशन कोलकत्ता 1969, पृष्ठ संख्या 310 (10)माहेश्वरी, डॉ. हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (जम्भवाणी के पाठ संपादन सहित) भाग प्रथम, बी. आर. पब्लिकेशन कोलकत्ता 1969, पृष्ठ संख्या 320 (11)माहेश्वरी, डॉ. हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (जम्भवाणी के पाठ संपादन सहित) भाग प्रथम, बी. आर. पब्लिकेशन कोलकत्ता 1969, पृष्ठ संख्या 327 (12)माहेश्वरी, डॉ. हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (जम्भवाणी के पाठ संपादन सहित) भाग प्रथम, बी. आर. पब्लिकेशन कोलकत्ता 1969, पृष्ठ संख्या 349 (13)माहेश्वरी, डॉ.हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (जम्भवाणी के पाठ संपादन सहित) भाग प्रथम, बी. आर. पब्लिकेशन कोलकत्ता 1969, पृष्ठ संख्या 351–52 (14)माहेश्वरी, डॉ.हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (जम्भवाणी के पाठ संपादन सहित) भाग प्रथम, बी. आर. पब्लिकेशन कोलकत्ता 1969, पृष्ठ संख्या 415 (15)माहेश्वरी, डॉ. हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (जम्भवाणी के पाठ संपादन सहित) भाग प्रथम, बी. आर. पब्लिकेशन कोलकत्ता 1969, पृष्ठ संख्या 315 (16)माहेश्वरी, डॉ.हीरालाल, जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (जम्भवाणी के पाठ संपादन सहित) भाग प्रथम, बी. आर. पब्लिकेशन कोलकत्ता 1969, पृष्ठ संख्या 326

OUR PUBLICATIONS

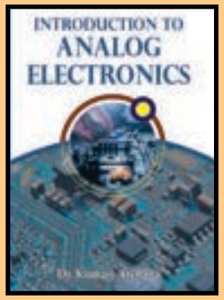

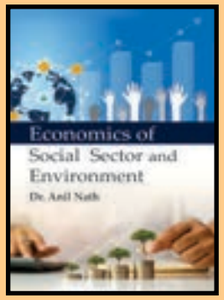

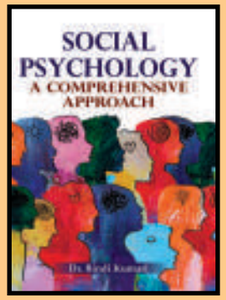

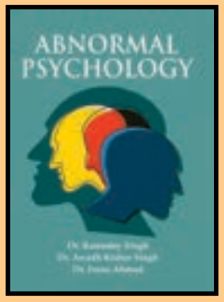

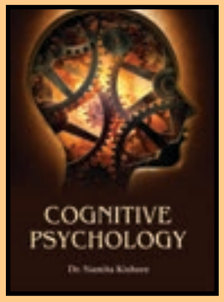

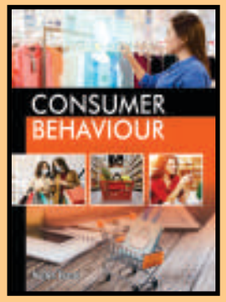

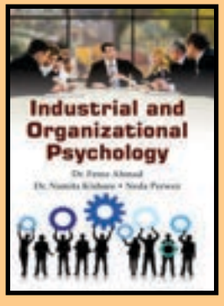

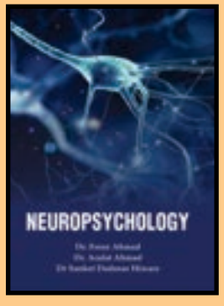

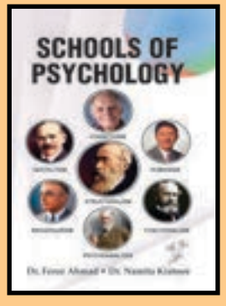

220, Pocket-V, Mayur Vihar-I, Delhi-110091 (INDIA)
Ph.: 011-40564514, 22753916

ISSN 0975-119X

Previously Care Listed Journal

वर्ष 17 अंक 3 मई-जून 2025

दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

India's Leading Referred Hindi Language Journal

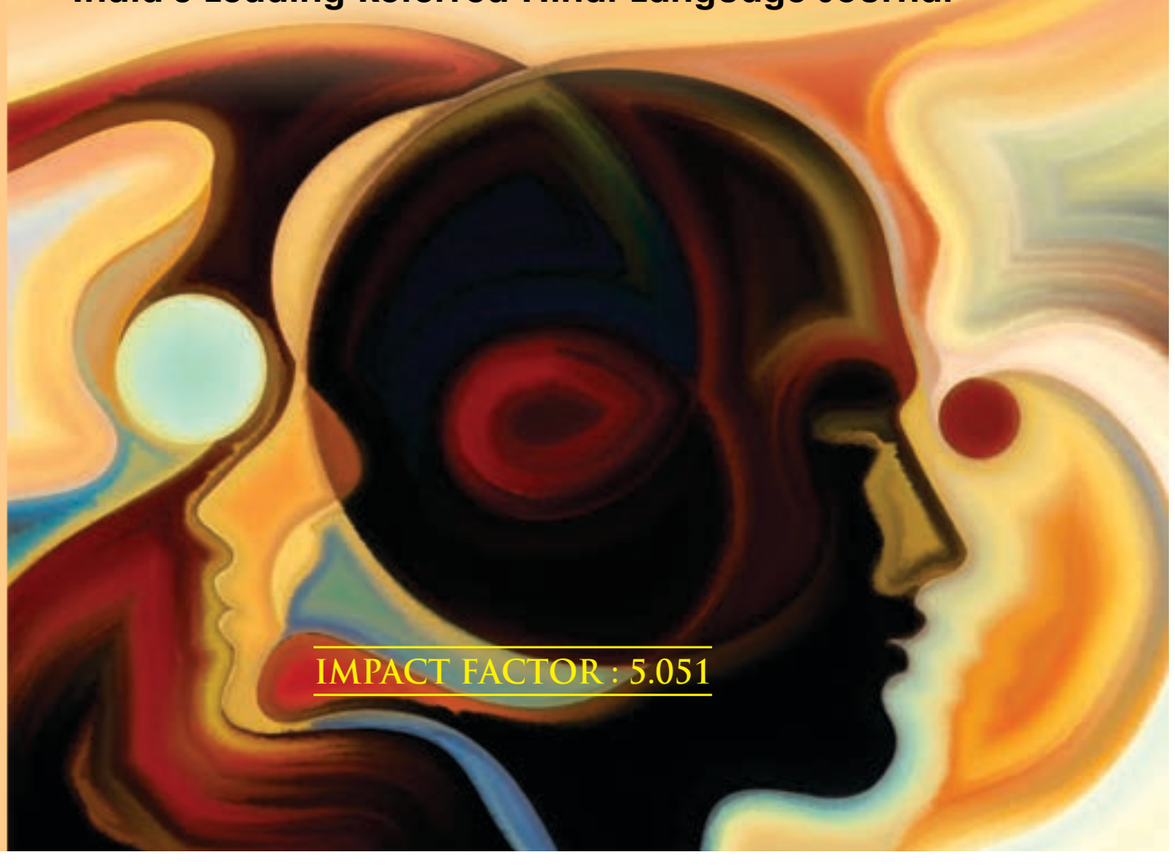

IMPACT FACTOR : 5.051

OUR PUBLICATIONS

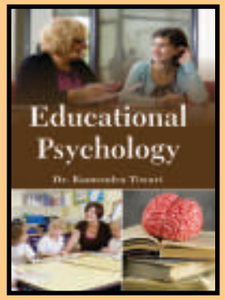

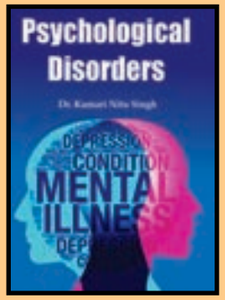

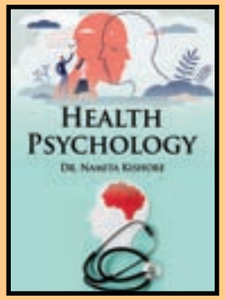

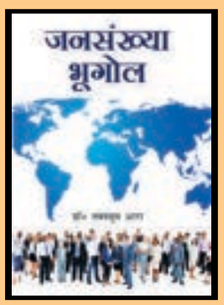

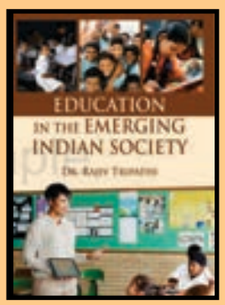

220, Pocket-V, Mayur Vihar-I, Delhi-110091 (INDIA)
Ph.: 011-40564514, 22753916

OUR PUBLICATIONS

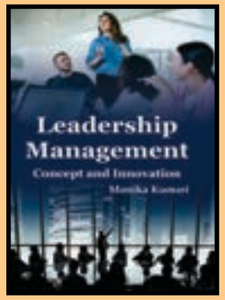

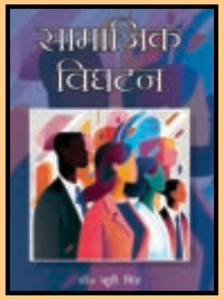

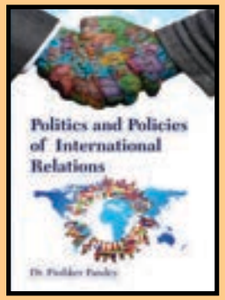

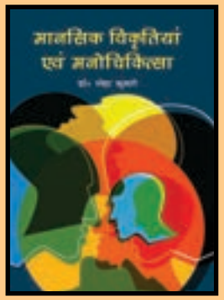

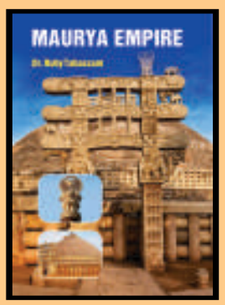

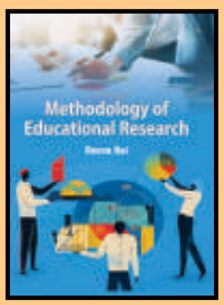

220, Pocket-V, Mayur Vihar-I, Delhi-110091 (INDIA)
Ph.: 011-40564514, 22753916

दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

डॉ. अश्विनी महाजन

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक

प्रो. प्रसून दत्त सिंह

महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

डॉ. फूल चन्द

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दृष्टिकोण प्रकाशन

वर्ष : 17 अंक : 3 ❑ मई–जून, 2025

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

डॉ. अरुण अग्रवाल
ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरबरो, ओंटारियो

डॉ. दया शंकर तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. प्रकाश सिन्हा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. दीपक त्यागी
दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर

डॉ. अरुण कुमार
रांची विश्वविद्यालय, रांची

डॉ. महेश कुमार सिंह
सिद्धू कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका

डॉ. हरिश्चन्द्र अग्रहरि
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा

डॉ. पूनम सिंह
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ. एस. के. सिंह
पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ. अनिल कुमार सिंह
जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा

डॉ. मिथिलेश्वर
वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

डॉ. अमर कान्त सिंह
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

डॉ. ऋतेश भारद्वाज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. स्वदेश सिंह
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. विजय प्रताप सिंह
छत्रपति साहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

संपादकीय सम्पर्क:

220, पॉकेट–5, मयूर विहार, फेज–I, दिल्ली–110091
फोन : 011–22753916, 40564514, 35522994 Mobile: 9710050610, 9810050610
e-mail : editorialindia@yahoo.com; editorialindia@gmail.com; delhijournals@gmail.com
Website : www.ugc-care-drishtikon.com

©Editorial India

Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

ISSN 0975-119X

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

सम्पादकीय

रक्षा निर्यात में भारत का वर्चस्व

पाकिस्तान के विरुद्ध सैन्य संघर्ष में प्राप्त सफलता के बाद रक्षा क्षेत्र में भारत की वैश्विक प्रतिष्ठा बढ़ गई है। ऐसे में रक्षा निर्यात के मामले में भी भारत का दबदबा बढ़ने की उम्मीद जगी है।

पाकिस्तान की आतंकी गतिविधियों के विरुद्ध भारत द्वारा किए गए जवाबी हमले के केवल चार दिनों में ही पाकिस्तान भयभीत हो गया। हालांकि संघर्ष विराम ने इस आतंकवादी राष्ट्र को और अधिक नुकसान से बचा लिया, परंतु इस अवधि में पाकिस्तान को भारी नुकसान झेलना पड़ा है। अगर हम संघर्ष के इन चार दिनों को देखें, तो भारत निश्चित रूप से अपनी रक्षा क्षमताओं, विशेष रूप से स्वदेशी रक्षा उपकरणों को वैश्विक स्तर पर अपने संबंधित श्रेणियों में सर्वश्रेष्ठ के बराबर या उससे भी बेहतर प्रदर्शित करने में सक्षम रहा है।

भारत सरकार के प्रेस सूचना ब्यूरो के अनुसार, आपरेशन सिंदूर ने भारतीय प्रणालियों द्वारा शत्रु की प्रौद्योगिकियों को बेअसर करने के ठोस सबूत भी पेश किए। भारत का रक्षा निर्यात वर्ष 2013-14 में 686 करोड़ रुपये से बढ़कर 2024-25 में 23,622 करोड़ रुपये तक पहुंच गया। पाकिस्तान के साथ सैन्य संघर्ष को देखते हुए रक्षा मंत्री ने संकेत दिए हैं कि भारत अपने रक्षा बजट में व्यापक वृद्धि कर सकता है।

रक्षा प्रणाली: भारत द्वारा निर्यात किए जाने वाले प्रमुख रक्षा उपकरणों में शामिल हैं- 'आकाश' सतह से हवा में मार करने वाली मिसाइल प्रणाली, जिसे आर्मेनिया जैसे देशों को निर्यात किया गया है और सूडान में प्रदर्शित किया गया। 'ब्रह्मोस सुपरसोनिक क्रूज मिसाइल', जिसे फिलीपींस को निर्यात किया जा रहा है और अन्य दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों ने भी इसमें रुचि दिखाई है। पिनाका मल्टी-बैरल राकेट लांचर, जिसे आर्मेनिया को निर्यात किया गया, 155 मिमी आर्टिलरी गन, जिसे आर्मेनिया को निर्यात किया गया, जो उन्नत आर्टिलरी प्रणालियों में भारत की क्षमताओं को उजागर करता है। डोर्नियर-228 विमान, जिसे परिवहन और निगरानी भूमिकाओं के लिए विभिन्न देशों को निर्यात किया गया। हालांकि, इन रक्षा वस्तुओं की विभिन्न देशों में पहले से ही मांग है, लेकिन आपरेशन सिंदूर के बाद का परिदृश्य भारत के रक्षा निर्यात के पक्ष में आ गया है। भारत अब अधिक रक्षा सामान बेचने की बेहतर स्थिति में है। इस आपरेशन ने न केवल भारत की सैन्य साख को बढ़ाया है, बल्कि स्वदेशी रूप से विकसित रक्षा प्रणालियों की विश्वसनीयता और प्रभावशीलता का जीवंत प्रदर्शन भी किया है।

आकाश: आकाश मिसाइल रक्षा प्रणाली भारत की स्वदेशी प्रणाली है, जिसने हाल ही में भारत-पाकिस्तान संघर्ष के दौरान अपनी प्रभावशीलता का प्रदर्शन किया है। इस प्रणाली को भारत द्वारा महत्वपूर्ण निवेश के साथ 15 वर्षों में विकसित किया गया है। आकाश ने आने वाले ड्रोन और मिसाइल को सफलतापूर्वक रोक दिया और भारत की रक्षा क्षमताओं को मजबूत करते हुए युद्ध क्षेत्र में अपनी ताकत साबित की। उल्लेखनीय है कि आर्मेनिया पहला देश है जिसने छह हजार करोड़ रुपये की लागत से 15 आकाश मिसाइल प्रणाली का आर्डर दिया था और पहली खेप पिछले साल ही भेजी जा चुकी है। लेकिन हालिया संघर्ष के दौरान आकाश ने राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण ध्यान आकर्षित किया है। अब जब आकाश मिसाइल प्रणाली की सफलता संदेह से परे साबित हो चुकी है, भारत दुनिया भर से भारी मात्रा में आर्डर की उम्मीद कर सकता है। अगर हमें केवल 200 मिसाइलों के लिए भी आर्डर मिलते हैं तो इससे 30 हजार करोड़ रुपये का राजस्व मिल सकता है।

ब्रह्मोस: भारत की ब्रह्मोस सुपरसोनिक क्रूज मिसाइल भारत-पाकिस्तान संघर्ष के दौरान पहली बार युद्ध के मैदान में दिखी। बताया जाता है कि भारतीय वायु सेना ने पाकिस्तान द्वारा भारत के हवाई क्षेत्र का उल्लंघन करने के प्रयास के जवाब में पाकिस्तान के अंदर

कई रणनीतिक स्थानों को निशाना बनाया। हालांकि, भारत सरकार या भारतीय सेना ने इसकी पुष्टि नहीं की है, लेकिन संघर्ष की अवधि के दौरान ही रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने लखनऊ में ब्रह्मोस एकीकरण और परीक्षण केंद्र का उद्घाटन किया। माना जा रहा है कि ब्रह्मोस मिसाइल ने अपने लक्ष्य पर बहुत ही सटीक निशाना लगाया है और पूरी दुनिया का ध्यान अपनी ओर खींचा है। ब्रह्मोस मिसाइल को रूस के सहयोग से भारत ने विकसित किया है, इसलिए पश्चिमी देशों में इसके विपणन में कुछ समस्याएं आ सकती हैं। लेकिन निश्चित रूप से, ब्रह्मोस की सिद्ध सफलता के कारण इसके बाजार में वृद्धि हो सकती है।

सिपरी (स्टाकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट) के अनुसार, वर्ष 2020 और 2024 के बीच रक्षा वस्तुओं का वैश्विक निर्यात सालाना 138 अरब डालर रहा है। शीर्ष पांच हथियार निर्यातक देश अमेरिका, फ्रांस, रूस, चीन और जर्मनी हैं। इन पांच देशों के पास इस अवधि के दौरान दुनिया के हथियारों के निर्यात का लगभग 72 प्रतिशत हिस्सा था। समझना होगा कि वैश्विक रक्षा निर्यात पर अब कुछ खिलाड़ियों का दबदबा नहीं रह गया है। हालांकि अमेरिका, रूस और फ्रांस अभी भी अग्रणी हैं, जबकि भारत, दक्षिण कोरिया, तुर्किये और इजरायल जैसे देश तेजी से बाजार हासिल कर रहे हैं। आपरेशन सिंदूर की सफलता और युद्धक्षेत्र में सिद्ध प्रदर्शन के साथ, भारत एक प्रमुख रक्षा निर्यातक बनने के लिए तैयार है, जो शुद्ध आयातक से वैश्विक सैन्य आपूर्ति शृंखलाओं में शुद्ध योगदानकर्ता बन रहा है।

– संपादक

इस अंक में

"महाकुंभ 2025: आध्यात्मिक-सांस्कृतिक धरोहर का महापर्व"–चन्द्रभान सिंह 1

विकसित बिहार के लिए गांवों को आर्थिक विकास का केंद्र बनाना आवश्यक: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० बिन्ध्याचल साह 7

ग्रामीण महिला सशक्तिकरण: समाजिक, आर्थिक, राजनितिक परिप्रेक्ष्य में–बेबी पाण्डेय; डॉ० संध्या श्रीवास्तव 12

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के उन्नयन में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का योगदान–डॉ० निशा कुमारी; पूजा गुप्ता 15

महिलाओं की सामाजिक स्थिति सुल्तानपुर के सन्दर्भ में–रुचि मिश्रा; डॉ० संध्या श्रीवास्तव 19

ग्रामीण महिलाओं के लिए प्रौढ़ शिक्षा: चुनौतियाँ एवं समाधान–साधना त्रिपाठी; पी० पी० गोस्वामी 22

नई शिक्षा नीति से संबंधित चुनौतियाँ–संगीतिका पाण्डेय; पी० पी० गोस्वामी 25

नीतिशतकम् में लोकजीवन की प्रवृत्तियाँ–सुरेन्द्र कुमार गौतम; प्रो० (डॉ०) सावित्री सिंह 29

हिंदी आत्मकथा: स्त्री की परंपरागत भूमिका पर उठते प्रश्न–पूनम 32

स्त्री आत्मकथा में शिक्षा हेतु संघर्ष: पितृसत्ता की मजबूत दीवार और उससे टकराव–पुष्पा 34

भारत की समुद्री सुरक्षा नीति का विकास: प्राचीन काल से आधुनिक युग तक का सामरिक विश्लेषण–अनुपमा कुमारी 36

भारत में निर्वाचन आयोग की प्रभावशीलता एवं महत्वपूर्ण भूमिका (A Comprehensive Study of the Role and Effectiveness of the Election Commission of India)–डॉ० जितेन्द्र कुमार 41

व्यावसायिक शिक्षा की पृष्ठभूमि एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का परिप्रेक्ष्य–डॉ० विभा मिश्रा; श्री दिलीप सोनवानी 44

आधुनिक भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका–डॉ० दिनेश मांडोत; प्रमोद कुमार 57

हिन्दी साहित्य: इतिहास और आलोचना–डॉ० धन लक्ष्मी शुक्ला 60

अयोध्या का नामकरण और विकास: एक ऐतिहासिक और जनसांख्यिकीय विश्लेषण–अंशुमान सिंह; डॉ० अनुपमा सिंह 63

भारत में डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी का औपनिवेशिक विकास: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–नन्दकिशोर कुमार 69

जनसंख्या संगठन एवं संसाधन: एक भौगोलिक विश्लेषण और सतत प्रबंधन की रणनीतियाँ–डॉ० मो० परवेज यहया 72

प्राकृतिक संसाधनों का महत्व एवं संरक्षणों का अवलोकन–डॉ० सरोज कुमार 76

दलित साहित्य में सहानुभूति और स्वानुभूति का प्रश्न–सचिन गौतम 80

दलित साहित्य में सहानुभूति और स्वानुभूति का प्रश्न

सचिन गौतम

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार

शोध सारांशः

सहानुभूति बनाम स्वानुभूति का प्रश्न साहित्य में प्रारंभ से ही रहा है। आधुनिक काल में नये विमर्शों के उद्भव के परिणामस्वरूप यह विवाद और ज्यादा बढ़ा है। दलित विमर्श में सहानुभूति आधारित दलित साहित्य और स्वानुभूति आधारित दलित साहित्य की प्रमाणिकता-अप्रमाणिकता के संबंध में अच्छा खासा विवाद रहा। दलित लेखकों का विचार है की जो दर्द व पीड़ा उन्होंने लंबे समय से झेली है, उस दर्द व पीड़ा को वे अन्य लेखकों की तुलना में श्रेष्ठ तरीके से अभिव्यक्त कर सकते हैं। अतः उनके द्वारा लिखे गये साहित्य को ही दलित साहित्य माना जाये। जबकि गैर दलित लेखकों का मत है कि सहानुभूति व स्वानुभूति के विवाद में पड़े बिना साहित्यिक प्रतिमानों के आधार पर उत्कृष्ट साहित्य की रचना की जाये। अगर कोई रचना सौंदर्यशास्त्र के नियमों पर खरी उतरती है तो उसे श्रेष्ठ साहित्य माना जाएगा। चाहे वह सहानुभूति से लिखा गया हो या स्वानुभूत हो।

इसके साथ ही आलोचकों का यह भी मानना है कि जो दलित साहित्य सौंदर्यशास्त्र के नियमों पर खरा नहीं उतरता, उसे श्रेष्ठ साहित्य नहीं माना जाएगा, भले ही वह स्वानुभूति के आधार पर ही क्यों न लिखा गया हो। अतः जहाँ एक तरफ दलित लेखक गैर दलित लेखकों द्वारा लिखे गये दलित साहित्य को सिर्फ सहानुभूति का साहित्य कहकर प्रमाणिक साहित्य मानने के पक्ष में नहीं हैं, वहीं दूसरी तरफ गैर दलित आलोचक सिर्फ स्वानुभूति के आधार पर लिखे गये दलित साहित्य को श्रेष्ठ साहित्य मानने के पक्ष में नहीं हैं। भले ही किसी साहित्यिक रचना की महानता गैर साहित्यिक सरोकारों की गुणवत्ता से तय होगी, लेकिन साहित्य के प्रतिमान हमेशा साहित्यिक होंगे।

बीज शब्दः सहानुभूति, स्वानुभूति, आदर्शवाद, संवेदना, स्वयंवेदना, दलित विमर्श, अस्मितामूलक साहित्य, सौंदर्यशास्त्र, यथार्थवाद, सृजनात्मकता, स्वाभिमान, हरिजन, पूर्वाग्रह, प्रतिमान, परिमार्जित, परिष्कृत।

मूल आलेखः

भारतीय साहित्य में प्रारंभ से ही प्राचीन भारतीय संस्कृति को उन्नत व सर्वश्रेष्ठ दिखाने का प्रयास किया गया। संस्कृत साहित्य तो लगभग पूरा का पूरा ही उच्च वर्ग केंद्रित रहा। समाज के वंचित वर्गों, विशेषतः स्त्री व निम्न वर्ग को जहाँ समाज में अधिकारों से वंचित रखा गया, वहीं उन्हें साहित्य में भी कोई विशेष स्थान प्राप्त नहीं हुआ। आदिकाल व रीतिकाल के लगभग संपूर्ण साहित्य में श्रृंगारिकता ही केंद्र में दिखायी देती है। भक्तिकालीन साहित्य में प्रारंभ में थोड़ी बहुत विद्रोही चेतना कबीर व रैदास जैसे कुछेक कवियों में दिखायी देती है, परन्तु भक्तिकाल के अंत तक आते-आते उन पर भी सामन्तवादी मूल्य हावी हो जाते हैं। आधुनिक काल से पूर्व की अधिकतर रचनाओं में नायक उच्च जाति के हैं, राजकुल के हैं, बलिष्ठ हैं, सौंदर्य से युक्त हैं और आदर्शवाद उनमे ठूँस-ठूँस कर भरा हुआ है। निम्न वर्ग के पात्र साहित्य में कहीं आये भी हैं तो एक ऑब्जेक्ट की भाँति दास या दासियों के रूप में आये हैं। प्रसिद्ध दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस विषय में लिखा है - "आखिर साहित्य किसके पक्ष में खड़ा था, किन मूल्यों को स्थापित कर रहा था? क्या एक दलित के लिये भी यह साहित्य उतना ही प्रासंगिक था, जितना एक उच्च वर्गीय व्यक्ति के लिये था? वह साहित्य समाज का एकपक्षीय चित्रण कर रहा था, जिसमें दलित जीवन का अक्स ही गायब था। यदि कहीं दलित पात्र साहित्य में आया भी है तो वह एक ऑब्जेक्ट की तरह आया, न कि एक सब्जेक्ट की तरह।"[1]

साहित्योतिहास के लंबे काल में किसी लेखक या रचनाकार का ध्यान इस और गया ही नहीं या यूँ कहें की इस बारे में सोचने की उन्हें आवश्यकता ही महसूस नहीं हुई। "जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा द्विज उच्यते" और "स्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः" जैसी उदात्त घोषणाओं के बाद भी भारत में बड़े स्तर पर जातीय उत्पीड़न व सामाजिक अन्याय जैसी घटनाएँ होती रहीं।

एक लंबे समय तक उपेक्षित रहने के पश्चात पिछले कुछ वर्षों में वंचित वर्गों के लोग स्वयं साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय हुए। विश्व में तत्कालीन समय में आयी कई क्रांतियों से प्रभावित होकर भारत में भी कई प्रकार के आंदोलन हुए। इन आंदोलनों के परिणामस्वरूप जैसे-जैसे वंचित वर्गों को संवैधानिक अधिकार मिले, इन्होंने समाज में अपनी स्थिति को मजबूत करना आरम्भ कर दिया। इनके लेखन के क्षेत्र में सक्रिय होने के साथ ही साहित्य में नये आधुनिक विमर्शों का उद्भव हुआ। प्रारंभ में दलित विमर्श और स्त्री विमर्श इनमें मुख्य रूप से शामिल थे, परंतु धीरे-धीरे इनमें आदिवासी विमर्श, ट्रांसजेंडर विमर्श, वृद्ध विमर्श, विकलांग विमर्श व समलैंगिकता विमर्श जैसे विचार भी सम्मिलित हो गये। समाज में विभिन्न प्रकार से शोषित व पीड़ित लोगों ने अपने अनुभवों को आधार बनाकर जो साहित्य लिखा, उसे अस्मितामूलक साहित्य के नाम से जाना गया। उदाहरण के लिए दलित साहित्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, डॉ. तुलसीराम आदि, स्त्री विमर्श में मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भंडारी, कृष्ण सोबती, ममता कालिया आदि तथा आदिवासी विमर्श में हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो तथा आई वी हांसदा आदि लेखकों का नाम लिया जा सकता है।

इसके साथ ही अनेक ऐसे आलोचक व साहित्यकार हुए जो इनकी तरह शोषित व उपेक्षित वर्गों से तो नहीं थे परंतु फिर भी उन्होंनें इनकी पीड़ा को समझकर उसे साहित्य में उकेरने का काम किया। मुंशी प्रेमचंद, नागार्जुन, अदम गोंडवी, राजेंद्र यादव तथा त्रिलोचन आदि प्रमुख लेखक हैं जो इसी श्रेणी में आते हैं। मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों में दलित जीवन का प्रतिबिंब देखा जा सकता है। उनके महाकाव्यात्मक उपन्यास 'गोदान में सिलिया के प्रसंग के माध्यम से दलित चेतना दर्शाने का काम किया है। कर्मभूमि उपन्यास में तो नायक ही दलित पात्र है। इसी प्रकार उनकी कहानी सद्गति, ठाकुर का कुआँ, तथा कफन आदि कहानियों में भी दलित उत्पीड़न का वर्णन है। नागार्जुन की कविता 'हरिजन गाथा और अदम गोंडवी की कविता 'चमारों की गली' में दलित जीवन का वीभत्स रूप उभरकर सामने आता है।

किंतु ये सभी लेखक गैर दलित हैं, इसलिए दलित आलोचक इनकी रचनाओं को दलित साहित्य मानने को तैयार नहीं हैं। यहीं पर सहानुभूति और स्वानुभूति आधारित साहित्य का विवाद उत्पन्न होता है। सहानुभूति से अभिप्राय अन्य व्यक्तियों, प्राणियों या काल्पनिक चरित्रों की दु:खों व पीड़ा को महसूस करने की योग्यता से है। इसमें दूसरों की पीड़ा को देखकर हमारे हृदय में करुणा व दया भाव उत्पन्न होता है। उस करुणा व दयाभाव से प्रेरित होकर लेखक जिस साहित्य की रचना करता है उसे सहानुभूति का साहित्य कहा जाता है।

स्वानुभूति से अभिप्राय स्वयं अनुभव की गई अनुभूति से है। जिस भी सुख-दु:ख या पीड़ा की अनुभूति हमने स्वयं की है, उसे हमसे बेहतर कोई नहीं जान सकता। अन्य व्यक्तियों को हमारी दयनीय अवस्था देखकर, हमें पीड़ा में देखकर हमसे सहानुभूति हो सकती है और वह अपने अनुमान के आधार पर हमारी पीड़ा को समझने का प्रयास कर सकता है। परंतु वह पूर्णत: हमारी पीड़ा को तब तक नहीं समझ पाएगा, जब तक उसने स्वयं इसका अनुभव न किया हो। उदाहरण के लिए किसी समृद्ध परिवार के बालक को सड़क पर किसी रोगी या भिखारी को देखकर जो भाव मन में आता है, वह सहानुभूति तो है किंतु स्वानुभूति नहीं है। क्योंकि न तो उसने कभी अभाव देखा है और न ही रोग की पीड़ा को महसूस किया है। जिस व्यक्ति को कभी कैंसर नहीं हुआ है, वह कैंसर पीड़ित को देखकर सिर्फ सहानुभूति ही रख सकता है, उसकी पीड़ा को पूर्णत: नहीं समझ सकता।

सहानुभूति और स्वानुभूति को लेकर जो विवाद दर्शन व अध्यात्म में था, आधुनिक विमर्शों के आगमन के बाद ये विवाद साहित्य में भी नजर आने लगा। अस्मितामूलक साहित्य के लेखकों का मत है कि जो पीड़ा, वंचना और दर्द उन्होंनें स्वयं महसूस किया है उसे सिर्फ वे ही श्रेष्ठ तरीके से साहित्य में वर्णित कर सकते हैं। गैर अस्मितामूलक साहित्य के लेखक सिर्फ अनुमान के आधार पर उनका साहित्य लिखेंगे व साहित्य में उन्हें करुणा व दया का पात्र बनायेंगे।

उदाहरण के लिए आधुनिक विमर्शों के साहित्य में स्वाभिमान की भावना दिखायी देती है, जबकि गैर दलित साहित्य में इन्हें सिर्फ दया का पात्र दिखाया गया है। दलित लेखकों को उनकी दया का पात्र बनना स्वीकार्य नहीं है। दलित लेखकों ने गैर दलित लेखकों के साहित्य को नकार दिया तथा अपने यथार्थ की पीड़ा व यातना को साहित्य का रूप देना प्रारम्भ कर दिया। दलित जीवन की पीड़ाओं की सार्वधिक अभिव्यक्ति आत्मकथाओं के रूप में हुई है। आधुनिक काल से पहले भी संत रैदास, कबीरदास, हीरा डोम, स्वामी अछूतानंद आदि की कविताओं में दलित चेतना का थोड़ा बहुत स्वर सुनायी देता रहा। परंतु आधुनिक काल का दलित विमर्श साहित्य डॉ. भीमराव अंबेडकर के जीवन संघर्ष व उनकी शिक्षाओं से प्रेरित था। इनमें जहाँ एक तरफ हजारों वर्षों से शोषित, पीड़ित, दमित दलित समाज की व्यथा कथा थी तो दूसरी तरफ उस पारंपरिक, विभाजनकारी, अन्यायपूर्ण व्यवस्था के प्रति विद्रोह भी था। इसमें स्वानुभूति के साथ स्वाभिमान की भावना भी थी।

राजनीति के क्षेत्र में जहाँ महात्मा गांधी व डॉ. अंबेडकर के दलितोद्धर के प्रति दृष्टिकोण में मतभेद रहा, वही मतभेद गांधीवाद से प्रभावित लेखकों और अम्बेडकरवाद से प्रभावित लेखकों में देखने को मिलता है। गांधीजी दलितों को करुणा व दया की दृष्टि से देखते हैं, सहानुभूति की नजर से देखते हैं और उन्हें हरिजन नाम देते हैं। उनसे प्रभावित लेखकों की स्थिति भी कुछ वैसी ही है।

परंतु डॉ. अंबेडकर व उनसे प्रभावित लेखक इस सहानुभूति के पक्ष में नहीं है। वे स्वयं के लिए दलित शब्द का संबोधन स्वीकार करते हैं। अगर गहनता से विचार किया जाये तो महात्मा गांधी और डॉ. अंबेडकर की दलितों के प्रति समझ में भी सहानुभूति तथा स्वानुभूति ही केंद्र में दिखायी देती है। दलित लेखकों ने गैर दलितों द्वारा लिखे गये साहित्य को अपना साहित्य मानने से मना कर दिया। इसके साथ ही इनकी कई रचनाओं पर दलितों का उपहास उड़ाने के आरोप भी लगाये। विद्वान 'सद्गति' व 'कफन' को दलित जीवन की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानते हैं। कफन को तो यथार्थवाद का चरमोत्कर्ष माना जाता है। किंतु ओमप्रकाश वाल्मीकि का मानना है कि 'कफन' यथार्थवादी दलित कहानी न होकर काल्पनिक पात्रों की सृष्टि है जिसमें दलितों के यथार्थ जीवन का वर्णन करने के नाम पर उनका मजाक उड़ाया गया है व उन्हें संवेदनहीन दिखाया गया है। वे लिखते हैं – "मेरा यह मानना है कि 'कफन' कहानी में अतिरंजित यथार्थ के साथ प्रेमचंद ने हजारों साल की हिंदू मानसिकता को ही स्थापित किया है, जिसमें एक दलित के प्रति पूर्वाग्रह ही सुदृढ़ हुआ है। यह कहानी प्रेमचंद के आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद के विपरीत है। इसलिए यह एक विवादास्पद कहानी का रूप ले लेती है।"[2] इसी प्रकार का विवाद बिहार के 'बेलछी-कांड' पर आधारित नागार्जुन की कविता 'हरिजन गाथा' के संबंध में है। "हरिजन-गाथा में कवि की सहानुभूति दलितों के साथ है लेकिन इसमें पारंपरिक वैदिक बिंबों एवं प्रतीकों का प्रयोग दलित चेतना की धार को कुंठित करने वाला है और इस रूप में 'हरिजन-गाथा' दलित चेतना का विस्तार न कर इसकी भावुक अभिव्यक्ति बनकर रह जाती है।"[3]

अन्य गैर दलित रचनाओं के संबंध में भी दलित विद्वानों और गैर दलित विद्वानों में मतभेद है और अधिकांश रचनाएँ विवाद में हैं। प्रेमचंद की मृत्यु के 65-70 साल बाद उनके बहुचर्चित उपन्यास 'रंगभूमि' को दलित विरोधी कहकर सार्वजनिक रूप से जलाया जाना इसी विवाद का परिणाम है। दलित आलोचकों का इस बारे में मत है कि भले ही रंगभूमि का नायक 'सूरदास' दलित है, किंतु इसमें सूरदास का उल्लेख उसके जातिवाचक नाम के साथ किया गया है। 'सद्गति' जैसी कहानियों में भी प्रेमचंद ने दलित पात्रों को उनकी जाति से संबोधित किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि का मत है कि गैर दलित लेखकों की संवेदना भले ही दलितों के साथ हो किंतु वे अब भी अपने पारिवारिक संस्कारों और पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं हैं। इस बात का प्रमाण स्थान-स्थान पर उनकी रचनाओं में दिखायी देता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के साथ मोहनदास नैमिशराय, डॉ. लिम्बावे और कँवल भारती जैसे प्रसिद्ध दलित आलोचक यह मानते हैं कि दलित लेखन के लिए दलित होना ही आवश्यक है। स्वयं के अनुभव से लिखा गया साहित्य ही श्रेष्ठ साहित्य है। जिसने स्वयं कभी जातिवाद के दंश व सामाजिक उत्पीड़न की पीड़ा को नहीं झेला है, वह अपने कुछ व्यक्तिगत पूर्वानुभवों के आधार पर समझने का प्रयास तो कर सकता है किंतु संपूर्णता के साथ साहित्य में अभिव्यक्त नहीं कर पाएगा। दलितों ने जो दर्द व पीड़ा अनुभव की है, हो सकता है कोई गैर दलित लेखक उसे कुछ हद तक महसूस कर सके, किंतु वह उतनी गहराई से उसे कभी नहीं समझ पाएगा जितना की एक स्व: अनुभूत व्यक्ति समझ सकता है। संवेदना कभी भी अंत: वेदना का स्थान नहीं ले सकती। "यह स्वानुभूति का साहित्य है, सहानुभूति का साहित्य नहीं है- जा के पाँव न फटे बेवाई, सो का जाने पीर पराई।"[4] लगभग सभी दलित विद्वान इस बात पर एकमत हैं कि दलितों द्वारा लिखित साहित्य को ही वास्तव में दलित साहित्य कहा जाएगा। उनके पास दलित यथार्थ का अनुभव है जिसे वे अपनी कविताओं में, कहानियों में व आत्मकथाओं में अभिव्यक्त करते हैं। उनके अनुभव पर आधारित जो साहित्य है, वही दलित साहित्य है। कँवल भारती भी इसके पक्ष में तर्क देते हैं- "क्या दलितों के द्वारा दलितों के लिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है? इसका उत्तर हाँ में दिया जा सकता है। क्योंकि सामाजिक विशेषाधिकार उपभोग करने वाले गैर दलित विशेषाधिकार विहीन दलित समाज की पीड़ा को कैसे समझ सकते हैं।"

संतानोत्पत्ति के समय एक स्त्री को होने वाली पीड़ा को पुरुष कभी नहीं समझ सकता, वह सिर्फ अनुमान लगा सकता है और उसकी पीड़ा को महसूस करने का प्रयास कर सकता है। वह पूर्णत: एक स्त्री की पीड़ा को कभी नहीं समझ पाएगा क्योंकि उसने कभी उस प्रकार की पीड़ा का अनुभव ही नहीं किया। एक स्त्री उस पीड़ा को जीतने अच्छे ढंग से वर्णित कर पाएगी, एक पुरुष लेखक के लिए भरसक प्रयास करने में पश्चात भी वैसा वर्णन करना संभव नहीं है। "भोग हुआ यथार्थ और स्वयं महसूस की गई वेदना से उत्कृष्ट साहित्य लिखा जा सकता है। शमशेर ने शायद स्त्री को केंद्र में रखकर सबसे ज्यादा कविताएँ लिखी होंगी लेकिन उनकी कविताएँ पढ़ने के बाद एक भी स्त्री या कवयित्री नहीं कह सकती कि यह हमारा कवि है।"[5]

ठीक इसी प्रकार से दलित जीवन का यथार्थ भी स्वानुभूति आधारित रचनाओं में ही देखा जा सकता है। कुछ आलोचकों ने साहित्य में सहानुभूति व स्वानुभूति के विवाद को ही व्यर्थ माना है। इनमें डॉ. रामबिलास शर्मा व डॉ. नामवर सिंह का नाम प्रमुख है। डॉ. रामबिलास शर्मा का मत है कि "साहित्यकार, साहित्यकार है, चाहे वह किसी भी जाति या धर्म का हो।"[6] दलित साहित्य में स्वानुभूति आधारित साहित्य पर उनका विचार है कि दलित लेखकों को इस व्यर्थ के विवाद में पड़ना ही नहीं चाहिए। क्योंकि इस विवाद का दलित साहित्य लेखन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है, जिसके चलते गैर दलित लेखकों ने इस विषय पर लिखना ही बंद कर दिया है। इस प्रकार के संवेदनशील विषय पर लिखकर वे उसकी प्रमाणिकता-अप्रमाणिकता के विवाद में नहीं पड़ना चाहते। इसके साथ ही उन्होंने यह सुझाव दिया है कि दलित लेखकों को अपनी भाषा पर काम करने की भी आवश्यकता है। सिर्फ यथार्थ का ज्यों-का-त्यों वर्णन कर देना ही साहित्य नहीं है, साहित्य में कलात्मकता आवश्यक है। हो सकता है किसी व्यक्ति के पास यथार्थ की बहुत बेहतर समझ हो, उसने स्वयं उसका अनुभव किया हो, किंतु इससे यह कदापि यह सिद्ध नहीं होता कि वह श्रेष्ठ साहित्य की रचना कर सकता है। इस विषय में उनका मत है- "दलित लेखन को साहित्यिक भाषा सीखनी चाहिए, सिर्फ गाली व आक्रोश से साहित्य नहीं बनता।"[7]

डॉ. नामवर सिंह का मत भी कुछ इसी प्रकार का है। उनका मानना है कि साहित्य में सौंदर्यशास्त्र के नियम काम करते हैं। किसी भी रचना को सिर्फ इसलिए साहित्य नहीं माना जा सकता कि वह भोगे हुए यथार्थ पर आधारित है। साहित्यिक नियमों का पालन करते हुए परिमार्जित ढंग से यदि रचना लिखी गई है, तो ही वह साहित्य का दर्जा पाने के योग्य है। उनका कहना है कि यथार्थ की समझ बहुत से व्यक्तियों के पास हो सकती है, परंतु सभी के पास भोगे हुए यथार्थ को शब्दों में पिरोने की कला नहीं हो सकती। भोगे हुए यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति उत्कृष्ट साहित्य हो सकती है। किंतु अपनी वेदना व पीड़ा को सिर्फ आक्रोश की भाषा में अभिव्यक्त करना साहित्य नहीं हो सकता। अपने एक कथन में उन्होंने इस बारे में कहा है- "यथार्थ की समझ और उस पर लेखन में फर्क करना होगा। संभव है कि दलित अथवा स्त्री का पास अपने यथार्थ की बेहतर समझ हो, लेकिन इससे लेखन आनिवार्यत: बेहतर नहीं हो पाएगा। समझ सकना एक बात है और उसे लिख सकना बिलकुल दूसरी बात। अपने समझे हुए को या अनुभूत किये हुए को आप लिख सकते हैं लेकिन रचना की एकमात्र शर्त यही नहीं है। मुख्य बात यह है कि आप उसे रचना का रूप दे सकेंगे।"[8]

डॉ. नामवर सिंह जैसे विद्वान सिर्फ स्वानुभूति के आधार पर अभिव्यक्त किए गये विचारों को साहित्य मानने के पक्ष में नहीं हैं। यही कारण है कि कलात्मकता व शिल्प की दृष्टि से आलोचक दलित साहित्य को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। डॉ. नामवर सिंह ने तो यहाँ तक कहा है कि - "हिन्दी दलित साहित्य की अभी पहली पीढ़ी लिख रही है जो अपने आक्रोश की तल्ख सपाटता को साहित्य का दर्जा देने दिलाने में व्यग्र है"[9]

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे दलित लेखक भी हैं जिन्होंने स्वानुभूति या स्वयंवेदना के प्रश्न को ज्यादा महत्व नहीं दिया। इनमें डॉ. तुलसीराम और डॉ. मातप्रसाद गुप्त का नाम लिया जा सकता है। इनका मत अन्य दलित लेखकों से थोड़ा भिन्न है। डॉ. तुलसीराम का मानना है कि गैर दलितों के लेखन को भी दलित साहित्य माना जा सकता है। लेकिन इसके साथ ही उन्होंनें यह शर्त भी रखी है कि गैर दलित लेखक की यथार्थ अनुभूति ऐसी हो जैसी महात्मा बुद्ध के साथ रहकर उनके ब्राह्मण शिष्यों की बौद्ध धर्म के संबंध में थी। उन्होंने कहा है- "दलित साहित्य केवल दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य नहीं है, बल्कि वह साहित्य है जो दलित चेतना को अभिव्यक्त करता है।"[10] डॉ. माताप्रसाद गुप्त भी संवेदना से प्रेरित लेखन को साहित्य मानने के पक्ष में हैं। उनके अनुसार गैर दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य भी दलित साहित्य के रूप में स्वीकार्य है- "अब यह माना जाने लगा है कि गैर दलितों द्वारा भी दलितों के जीवन के शोषण, अपमान, उत्पीड़न को अगर प्रखरता से पकड़ा गया है तो वह भी दलित साहित्य की श्रेणी में आता है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। इसलिए दलितों के दर्द की दास्तान जिस भी साहित्य में है, वह चाहे किसी के भी द्वारा लिखा गया हो, वही दलित साहित्य है।"[11]

विद्वानों में तर्क-वितर्क होता रहा तो साहित्य में सहानुभूति व स्वानुभूति के विवाद को कितना भी बढ़ाया जा सकता है। लेकिन यदि सकारात्मक दृष्टिकोण से और हिंदी साहित्य के हित में विचार किया जाये तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सहानुभूति के आधार पर लिखा गया साहित्य भी दलित साहित्य हो सकता है। यह बात सत्य है कि संवेदना कभी स्वयंवेदना का स्थान नहीं ले सकती। अत: वह स्वानुभूति के आधार पर लिखे गये साहित्य जितना श्रेष्ठ नहीं होगा, किंतु कहीं-न-कहीं वह समाज में दलित वर्ग के प्रति सकारात्मक चेतना उत्पन्न करने में सहायक ही होगा। दूसरी बात यह भी है कि कोई आवश्यक

नहीं है कि जो व्यक्ति जन्म से स्वर्ण हो, वह शोषक ही होगा और जो जन्म से दलित हो वह शोषित ही होगा। कोई स्वर्ण समाज में जन्म व्यक्ति भी शोषित हो सकता है। चाहे उस सीमा तक शोषित न हो जिस सीमा तक एक दलित व्यक्ति का शोषण हुआ है। सहानुभूति द्वारा स्वानुभूति को नहीं समझा जा सकता और न ही सहानुभूति का साहित्य स्वानुभूति के साहित्य से श्रेष्ठ हो सकता है। किंतु यह बात भी सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास सृजनात्मकता का गुण नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभव को, अपनी पीड़ा को साहित्य का रूप देने में सक्षम नहीं होता। यदि स्वानुभूति और सृजनात्मकता का गुण आपस में मिल जाये तो उत्कृष्ट साहित्य की रचना की जा सकती है।

गैर दलित लेखकों के लिए भी यह आवश्यक है कि वे दलित वर्ग के विषय में लिखते समय अपने पारिवारिक, पारंपरिक संस्कारों तथा दलितों के प्रति पूर्वाग्रह को दरकिनार कर दें तथा हजारों वर्षों के उनके शोषण से उत्पन्न दर्द व पीड़ा को समझने का प्रयास करें। तभी एक परिमार्जित तथा परिष्कृत साहित्य की रचना हो सकेगी। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखने की आवश्यकता है कि जिसके कल्याण के लिए आप साहित्य रचना कर रहें हैं, आपके लेखन से उनकी भावनाएँ आहत न हों। साथ ही दलित लेखकों को भी चाहिए कि साहित्य में गैर दलित लेखकों का भी स्वागत करें न कि उनकी प्रत्येक रचना को गैर दलित साहित्य मानकर तिरस्कृत करें। उन्हें चाहिए कि अपनी बात को सिर्फ गाली या आक्रोश की भाषा में न कहकर साहित्यिक भाषा में अपनी बात को लिखने का प्रयास करें। तभी दलित साहित्य के सृजन से भविष्य में नये विमर्शों को भी उभरने में सहायता मिलेगी।

संदर्भः

1. वाल्मीकि, ओमप्रकाशः हिन्दी दलित साहित्य का वैचारिक संघर्ष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या 102
2. सिंह, पी० एन०,: दलित साहित्यः अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, तीसरा संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या 117
3. पूर्ववत् पृष्ठ संख्या 168
4. वाल्मीकि, ओमप्रकाशः हिन्दी दलित साहित्य का वैचारिक संघर्ष, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या 49
5. पूर्ववत् पृष्ठ संख्या 77
6. सिंह, पी० एन०: दलित साहित्यः अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, तीसरा संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या 69
7. पूर्ववत् पृष्ठ संख्या 69
8. पूर्ववत् पृष्ठ संख्या 70
9. पूर्ववत्, पृष्ठ संख्या 69
10. वाल्मीकि, ओमप्रकाशः हिन्दी दलित साहित्य का वैचारिक संघर्ष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या 166
11. सिंह, पी० एन०: दलित साहित्यः अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, तीसरा संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या 92

ISSN 0975-119X

Peer Reviewed Journal

वर्ष 17 अंक 6 नवंबर-दिसंबर 2025

दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

India's Leading Refereed Hindi Language Journal

IMPACT FACTOR : 5.051

OUR PUBLICATIONS

220, Pocket-V, Mayur Vihar-I, Delhi-110091 (INDIA)
Ph.: 011-40564514, 22753916

OUR PUBLICATIONS

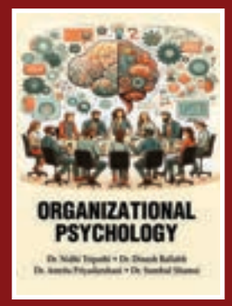

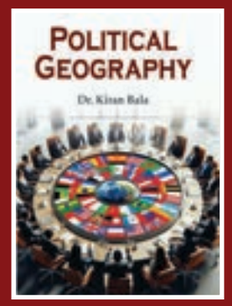

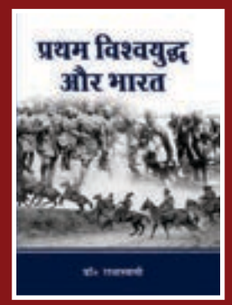

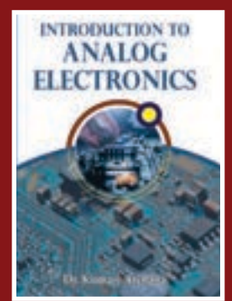

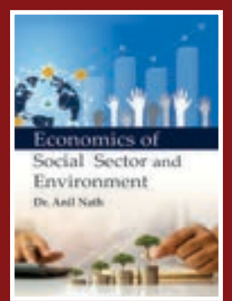

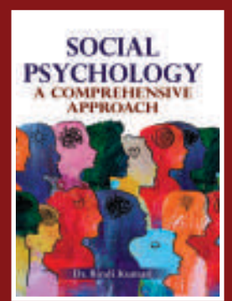

220, Pocket-V, Mayur Vihar-I, Delhi-110091 (INDIA)
Ph.: 011-40564514, 22753916

OUR PUBLICATIONS

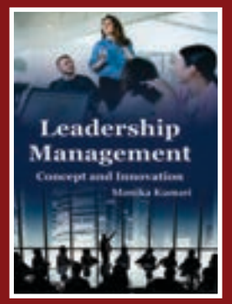

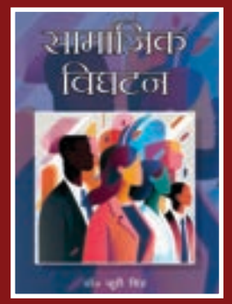

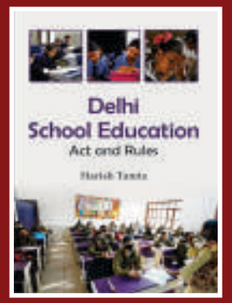

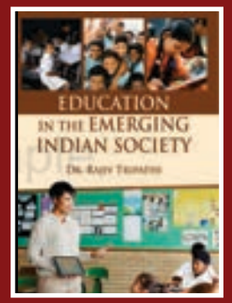

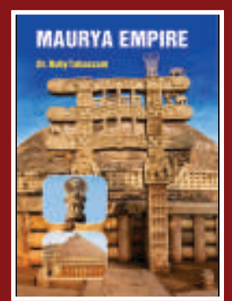

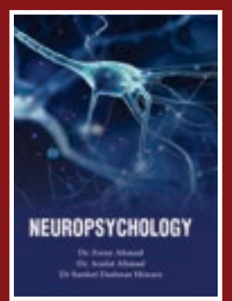

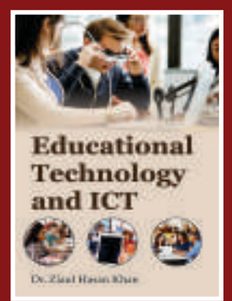

220, Pocket-V, Mayur Vihar-I, Delhi-110091 (INDIA)
Ph.: 011-40564514, 22753916

दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

डॉ. अश्विनी महाजन

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक

प्रो. प्रसून दत्त सिंह

महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

डॉ. फूल चन्द

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दृष्टिकोण प्रकाशन

वर्ष : 17 **अंक** : 6 ❑ नवम्बर-दिसम्बर, 2025

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

डॉ. अरुण अग्रवाल
ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरबरो, ओंटारियो

डॉ. दया शंकर तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. प्रकाश सिन्हा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. दीपक त्यागी
दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर

डॉ. अरुण कुमार
रांची विश्वविद्यालय, रांची

डॉ. महेश कुमार सिंह
सिद्धू कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका

डॉ. हरिश्चन्द्र अग्रहरि
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा

डॉ. पूनम सिंह
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ. एस. के. सिंह
पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ. अनिल कुमार सिंह
जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा

डॉ. मिथिलेश्वर
वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

डॉ. अमर कान्त सिंह
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

डॉ. ऋतेश भारद्वाज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. स्वदेश सिंह
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. विजय प्रताप सिंह
छत्रपति साहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

संपादकीय सम्पर्क:

220, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-110091
फोन : 011-22753916, 40564514, 35522994 Mobile: 9710050610, 9810050610
e-mail : editorialindia@yahoo.com; editorialindia@gmail.com; delhijournals@gmail.com
Website : www.ugc-care-drishtikon.com

©Editorial India

Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

ISSN 0975-119X

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

सम्पादकीय

अमेरिकी शटडाउनः बहुत बड़ी घटना का छोटा प्रस्तुतीकरण

पिछले एक माह से अधिक समय से अमेरिका में शटडाउन है। कुछ आवश्यक सेवाओं को छोड़कर अधिकांश सरकारी विभागों में कामकाज ठप है। अमेरिकी इतिहास का यह 11वां शटडाउन है, जिसमें यह सबसे लंबा है। इससे पिछला बड़ा शटडाउन भी ट्रंप के कार्यकाल में ही हुआ था। यदि भारत में ऐसा हुआ होता तो पूरी दुनिया में, विशेष रूप से अमेरिका में भारतीय संविधान और व्यवस्था की धज्जियां उड़ाते हुए बड़ी संख्या में लेख लिखे जाते। लेकिन अमेरिका की इतनी बड़ी घटना को भी अत्यंत न्यून तरीके से प्रस्तुत किया जा रहा है

आज पूरी दुनिया में अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा लगाए गए बेवजह, अन्यायपूर्ण और बहुपक्षीय व्यापार नियमों के खिलाफ टैरिफ की सर्वत्र चर्चा हो रही है, लेकिन दुनिया में एक महत्वपूर्ण विषय सार्वजनिक चर्चा से लगभग बाहर है। वस्तुतः अमेरिकी सरकार का शटडाउन जो एक अक्टूबर से जारी है। एक अक्टूबर से अमेरिका का सरकारी कामकाज लगभग पूर्ण रूप से ठप है। यह अभी तक का सबसे लंबा और बड़ा शटडाउन हो गया है। इस शटडाउन के परिणामस्वरूप लगभग नौ लाख संघीय कर्मचारियों को छुट्टी पर भेज दिया गया और 20 लाख अन्य कर्मचारी बिना वेतन के काम कर रहे हैं। स्वास्थ्य सेवा और परिवहन, सुरक्षा, प्रशासन जैसी आवश्यक सेवाएं जारी हैं, लेकिन इसके अलावा शेष सभी सरकारी विभागों का कार्य तब से ठप है।

अमेरिका में सरकार का बजट वर्ष एक अक्टूबर 2025 से शुरू हुआ, लेकिन अमेरिका की संसद (कांग्रेस) सरकारी खर्च को समय पर अनुमोदित नहीं कर पाई। इस कारण सरकार के कई विभागों को काम कराने के लिए कानूनी रूप से पैसा मिलना बंद हो गया और इस प्रकार अमेरिका के सरकारी विभागों में शटडाउन शुरू हो गया। अमेरिका में दो प्रमुख दल हैं, रिपब्लिकन पार्टी और डेमोक्रेटिक पार्टी। राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप रिपब्लिकन पार्टी से आते हैं। रिपब्लिकन संचालित हाउस में तत्काल एक बिल फंडिंग कराने की पहल तो हुई, लेकिन सीनेट में उसे समर्थन नहीं मिला। संसद की यह शिकायत है कि राष्ट्रपति प्रशासन बजट प्रक्रिया में संसद (कांग्रेस) की शक्तियों का अतिक्रमण कर रहे हैं। कांग्रेस को डर है कि यदि बिना शर्त बजट को पारित कर दिया जाता है तो कांग्रेस की शक्तियों का हनन होगा।

खाद्य सहायता कार्यक्रमों के थमने का खतराः शटडाउन का असर यह है कि न केवल सरकारी कामकाज ठप है, बल्कि चार करोड़ से अधिक लोगों को खाद्य सहायता, खासतौर पर सप्लिमेंटल न्यूट्रीशिएंटल असिस्टेंट प्रोग्राम यानी एसएनएपी के रुकने का खतरा मंडरा रहा है। कुछ विभागों ने तो निजी क्षेत्र से मिलकर कुछ फंडिंग जुटाई है, ताकि कम से कम सैनिकों को वेतन मिल सके। सदन (हाउस) के स्पीकर ने सदन को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया है, जिसके कारण यह शटडाउन और आगे भी बढ़ सकता है।

ऐसा नहीं है कि डेमोक्रेट जिद पर अड़े हैं, बल्कि जाहिर तौर पर उन्होंने अपनी मांग को घटाकर केवल 20 अरब डालर तक कर दिया है, जो पूर्व की मांग से कहीं कम है। वर्तमान मामले में संघर्ष केवल अंतर-दलीय ही नहीं है, सत्ताधारी दल रिपब्लिकन पार्टी के भीतर भी मतभेद हैं। आम तौर पर शटडाउन तब होता है जब कांग्रेस विनियोग विधेयक (या एक अस्थायी वित्त पोषण उपाय, जिसे सतत प्रस्ताव कहा जाता है) पारित करने में विफल रहती है। पार्टियां इस बात पर असहमत हैं कि रक्षा, कल्याण, आव्रजन, जलवायु कार्रवाई आदि के लिए कितना धन आवंटित किया जाए। उदाहरण के लिए रिपब्लिकन कल्याणकारी कार्यक्रमों पर खर्च में कटौती या सीमा लगाने की मांग कर रहे हैं, जबकि डेमोक्रेट सामाजिक और बुनियादी ढांचे पर खर्च बढ़ाने पर जोर दे रहे हैं।

वैचारिक मुद्देः राजनीतिक दलों के बीच वैचारिक मुद्दे भी हैं। ट्रंप के पिछले शासन में डेमोक्रेट्स ने मेक्सिको सीमा पर डोनाल्ड ट्रंप के दीवार के प्रस्ताव का विरोध किया था और इस बार वे ट्रंप की ऊर्जा नीति में बदलावों के खिलाफ हैं, जिसमें राष्ट्रपति पहले

घोषित पर्यावरणीय उद्देश्यों के विपरीत जीवाश्म ईंधन के उत्पादन को बढ़ावा देने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए भले ही दोनों पक्ष खर्च के स्तर पर सहमत हों, वैचारिक शर्तें बजट पारित होने में बाधा बन सकती हैं। हाल ही में एक बड़ी बाधा रिपब्लिकन पार्टी के भीतर का संघर्ष रहा है। कट्टरपंथियों के एक छोटे समूह (जो अक्सर "फ्रीडम काकस" से जुड़े होते हैं) ने तब तक किसी भी अल्पकालिक वित्तपोषण का समर्थन करने से इन्कार कर दिया है, जब तक कि खर्च में बड़ी कटौती या नीतिगत रियायतें नहीं दी जातीं। इससे स्पीकर की द्विदलीय समझौतों पर बातचीत करने की क्षमता कमजोर हो जाती है।

अमेरिका में बड़े पैमाने पर नवंबर, 2026 में चुनाव होने वाले हैं। इस अमेरिकी मध्यावधि चुनाव में अमेरिकी प्रतिनिधि सभा की सभी 435 सीटों और अमेरिकी सीनेट की 100 में से 35 सीटों के लिए चुनाव होंगे, जो 120वीं संयुक्त राज्य कांग्रेस का निर्धारण करेंगे। 29 राज्य और प्रादेशिक अमेरिकी गवर्नर चुनाव के साथ ही कई राज्य और स्थानीय चुनाव भी लड़े जाएंगे। अमेरिका में आगामी मध्यावधि चुनाव वास्तव में सरकारी शटडाउन के त्वरित या स्थिर समाधान के रास्ते में बाधा बन रहे हैं। देश हित में समझौते के बजाय राजनीतिक गुणा-भाग ज्यादा महत्वपूर्ण हो रहा है। चुनावी मौसम में दोनों पार्टियां ज्यादा कठोर हो रही हैं। वे ऐसा करने से बचते हैं जो दूसरे पक्ष के आगे झुकने जैसी लगे, क्योंकि उन्हें डर होता है कि इससे मतदाताओं के बीच उनकी छवि बिगड़ सकती है।

सांसद शटडाउन के मुद्दे का इस्तेमाल अपने मतदाता आधार को बढ़ाने के लिए कर रहे हैं और व्यावहारिक समाधान की दिशा में काम करने के बजाय दूसरी पार्टी पर दोष मढ़ रहे हैं। मध्यावधि चुनाव के मद्देनजर पार्टी नेता, खासकर कांग्रेस में अपने अधिक वैचारिक सदस्यों के दबाव में हैं। इससे खर्च विधेयकों पर आम सहमति बनाना मुश्किल हो रहा है। दीर्घकालिक बजट प्रस्तावों के बजाय राजनेता चुनाव से पहले कठोर वित्तीय निर्णय लेने से बचने के लिए अल्पकालिक विस्तार या निरंतर प्रस्तावों को प्राथमिकता दे रहे हैं। निष्कर्षतः गहरे दलीय विभाजन और आगामी मध्यावधि चुनावों से प्रेरित राजनीतिक गणित को देखते हुए यह संभावना कम ही है कि अमेरिकी सरकार का शटडाउन जल्द ही समाप्त होगा।

दोनों ही दल समझौता करने के बजाय अपनी चुनावी स्थिति बनाए रखने पर ज्यादा ध्यान केंद्रित करते दिख रहे हैं, और किसी भी समाधान के लिए एक पक्ष को ऐसी रियायतें देनी होंगी जो चुनावों से पहले राजनीतिक रूप से महंगी पड़ सकती हैं। इसलिए जब तक जनता या आर्थिक दबाव नहीं बढ़ता, गतिरोध बना रह सकता है, जिससे शटडाउन के शीघ्र समाप्त में देरी हो सकती है।

– संपादक

इस अंक में

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका और भविष्य: एक अध्ययन–डॉ० स्वाती सिंह 1

राजनीति के अपराधीकरण का महिलाओं पर प्रभाव का अध्ययन–डॉ० संध्या कुमारी 5

राजनीतिक आधुनिकीकरण और भारतीय राजनीति में युवाओं का योगदान–प्रकाश नारायण 8

भारत के पड़ोसी देशों के साथ संबंध और सुरक्षा: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–उज्जवल कुमार सिंह 12

डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन और ओबीसी भागीदारी को मजबूत करना: बिहार में ग्रामीण लोकल सेल्फ-गवर्नेंस की भूमिका; गया ज़िले की एक केस स्टडी–सुमित कुमार 16

कृषि पद्धति परिवर्तन का स्वरूप: नालंदा जिला एक भौगोलिक अध्ययन–सोनू कुमार; प्रो० (डॉ०) विभा सिंह 25

डॉ० बी०आर० अंबेडकर की राजनीति और भारतीय दलित चेतना का निर्माण: एक अध्ययन–डॉ० प्रतिमा कुमारी 31

भारत में लैंगिक न्याय और लिंग की राजनीति: एक अवलोकन–डॉ० धनंजय यादव 36

स्थानीय स्वशासन में महिला सशक्तिकरण का प्रभाव विशेषत: बिहार राज्य के संदर्भ में–स्वीटी गुप्ता 41

बिहार में स्वतंत्रता संग्राम और महिलाओं का योगदान–प्रिया कुमारी 48

भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और सामाजिक पुनरुत्थानवाद की परस्पर संबद्धता का अवलोकन–डॉ० कुमार रश्मि रंजन 54

रणेन्द्र के उपन्यासों में आदिवासी चेतना और विकास-विमर्श का टकराव–सचिन गौतम; डॉ० शर्मिला 59

रणेन्द्र के उपन्यासों में आदिवासी चेतना और विकास-विमर्श का टकराव

सचिन गौतम

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार

डॉ० शर्मिला

शोध निर्देशक, सहायक प्रोफेसर, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार

शोध सारांश

आधुनिक हिंदी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्शों के उदय ने साहित्य को नए वैचारिक और सामाजिक सरोकार प्रदान किए हैं। स्त्री विमर्श और दलित विमर्श के बाद आदिवासी विमर्श ने विशेष रूप से साहित्य में एक सशक्त उपस्थिति दर्ज की है। आदिवासी विमर्श अन्य अस्मिता-विमर्शों से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें केवल सामाजिक भेदभाव या आर्थिक शोषण का प्रश्न ही नहीं, बल्कि जल, जंगल और जमीन से जुड़ी सांस्कृतिक अस्मिता तथा अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न केंद्रीय रूप से उपस्थित है। भूमंडलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों ने आदिवासी समाज की जीवन-व्यवस्था में गहरा हस्तक्षेप किया है, जिसके परिणामस्वरूप उनका पारंपरिक जीवन, सांस्कृतिक विरासत और ऐतिहासिक स्मृतियाँ संकट में पड़ गई हैं। साहित्य ने इस संघर्ष को अभिव्यक्त करने का महत्वपूर्ण दायित्व निभाया है।

इस संदर्भ में रणेन्द्र के उपन्यास गायब होता देश और ग्लोबल गाँव के देवता आदिवासी जीवन-संघर्ष के सशक्त साहित्यिक दस्तावेज के रूप में सामने आते हैं। गायब होता देश मुंडा आदिवासियों के जीवन पर केंद्रित है, जहाँ विकास परियोजनाओं, बहुराष्ट्रीय कंपनियों, पूँजीवादी शक्तियों और प्रशासनिक तंत्र की मिली-भगत के कारण आदिवासियों को उनके पारंपरिक भू-क्षेत्र से विस्थापित किया जा रहा है। उपन्यास में यह स्पष्ट किया गया है कि आधुनिक विकास की अवधारणा किस प्रकार प्रकृति-विरोधी और मानव-विरोधी बनती जा रही है। आदिवासियों के लिए प्रकृति केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवन और आस्था का आधार है। जल, जंगल और जमीन से उनका संबंध भावनात्मक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक है। इस उपन्यास में विस्थापन, हिंसा, हत्या, कर्ज-जाल, छल-कपट और कानून के दुरुपयोग के माध्यम से आदिवासियों की जमीन हड़पने की प्रक्रिया का यथार्थवादी चित्रण किया गया है। परमेश्वर सिंह पाहन जैसे पात्र आदिवासी प्रतिरोध और संघर्ष की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति बनकर उभरते हैं।

दूसरी ओर ग्लोबल गाँव के देवता असुर जनजाति के जीवन और संघर्ष को केंद्र में रखता है। यह उपन्यास असुरों के ऐतिहासिक मिथकीकरण, सांस्कृतिक दानवीकरण और समकालीन शोषण की परतों को खोलता है। उपन्यास यह स्पष्ट करता है कि प्रभुत्वशाली शक्तियाँ पहले किसी समुदाय को अमानवीय और असभ्य सिद्ध करती हैं, फिर उसके संसाधनों पर अधिकार जमाती हैं। शिक्षा, धर्म, राजनीति और पूँजीकृये सभी शक्तियाँ असुर जनजाति के शोषण में सहभागी बनती हैं। इसके साथ ही उपन्यास आदिवासी स्त्रियों की स्थिति, उनकी भूमिका, संघर्ष और समाज में उनकी अपेक्षाकृत सशक्त उपस्थिति को भी सामने लाता है।

बीज शब्द - आदिवासी विमर्श, अस्मिता, जल-जंगल-जमीन, विस्थापन, भूमंडलीकरण, पूँजीवाद, सांस्कृतिक विरासत, प्रतिरोध, रणेन्द्र, समकालीन हिंदी उपन्यास

आधुनिक काल में साहित्य में नवीन विमर्शों की शुरुआत हुई। स्त्री विमर्श व दलित विमर्श जैसे लेखन प्रभावी रूप से सामने आए। वर्तमान समय तक आते-आते अस्मितामूलक लेखन ने साहित्य में जोर पकड़ा तथा वृद्ध विमर्श, ट्रांसजेंडर विमर्श, आदिवासी विमर्श, दिव्यांग विमर्श जैसे कई विमर्श अस्तित्व में आये और इनसे संबंधित भरपूर साहित्य लिखा गया। वैसे तो सभी विमर्शों के लेखक अपनी सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए लिख रहे थे परंतु आदिवासी विमर्श इनसे कई मायनों में अलग था। आदिवासी अपनी पुरातन संस्कृति तथा रीति-रिवाजों को बचाने के लिए संघर्ष कर रहे थे। ऐसा नहीं है कि आदिवासी विमर्श से पहले आदिवासी जीवन पर आधारित साहित्य नहीं लिखा गया, लेकिन पिछले बीस-पच्चीस सालों के दौरान भूमंडलीकरण व उदारीकरण की तीव्र होती प्रक्रिया के साथ जिस प्रकार से बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने आदिवासियों के जीवन में हस्तक्षेप किया और इसके कारण इनके जल, जंगल और जमीन से संबंधित पारंपरिक अधिकारों का अतिक्रमण आरंभ हुआ, इसने आदिवासी जीवन में संघर्ष को और बढ़ाया। इस संघर्ष में सरकार व प्रशासन का हस्तक्षेप आदिवासियों के विरुद्ध तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पक्ष में रहा। इसके परिणामस्वरूप आदिवासियों के समक्ष अस्तित्व एवं अस्मिता की रक्षा का संकट

उपस्थित हो गया। यदि वे अपनी परंपरा व सांस्कृतिक पहचान को महत्व देते हैं तो उनका अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है और यदि वे अपने अस्तित्व की रक्षा करते हैं तो उनकी सांस्कृतिक विरासत खतरे में पड़ जाएगी। इस प्रकार आदिवासियों के इस संघर्ष ने साहित्य की एक नई धारा को जन्म दिया। दलित विमर्श से प्रेरणा ग्रहण करते हुए आदिवासी लेखकों ने भी साहित्य में अपनी समस्याओं को उठाया। इन्ही लेखकों में से एक बहुचर्चित नाम रणेंद्र का है। आदिवासी जीवन से संबंधित इनके दो उपन्यास बहुत प्रसिद्ध रहे- 'गायब होता देश' और 'ग्लोबल गाँव के देवता'। दोनों उपन्यासों में आदिवासी जीवन के संघर्ष, उनकी परंपरा तथा संस्कृति का सूक्ष्मता से चित्रण किया गया है।

रणेंद्र का उपन्यास 'गायब होता देश' 2014 में प्रकाशित हुआ जो मुंडा आदिवासियों के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया है। आधुनिक विकास की दौड़ में सभ्य कही जाने वाली मनुष्य जाति इतनी अंधी हो गई है कि अंधाधुंध तरीके से प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास कर रही है। जो पेड़, पहाड़, झरने आदिवासियों के अपने थे, जिनको वे देवता मानकर पूजते थे, उनका उपयोग भी करते थे तथा संरक्षण भी करते थे- आज आधुनिक विकास के नाम पर उन प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट किया जा रहा है। परिणामस्वरूप आदिवासी जनजातियों को अपने घरों से विस्थापित होना पड़ रहा है। उन घरों से जहाँ वर्षों से उनके पूर्वजों ने प्रकृति की अमूल्य निधि को सहेज कर रखा हुआ था तथा जिस प्रकृति के ऊपर उनका सारा जीवन निर्भर है। अगर मछली को पानी से अलग कर दें तो वह अधिक समय तक जीवित नहीं रह पायेगी। यही स्थिति आदिवासी जनजातियों की है। वे अपने जल, जंगल और जमीन से इतनी गहराई से जुड़े हैं कि प्रकृति के प्रति उनका एक भावनात्मक लगाव सा हो गया है। उनकी रक्षा के लिए वे आंदोलन भी कर सकते हैं, लड़ भी सकते हैं और अपने प्राण भी दे सकते हैं। यह उपन्यास आदिवासियों के विस्थापन की समस्या पर प्रकाश डालता है। इसमें मुंडा आदिवासियों की विरासत पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया जाता है। विकास के नाम पर आदिवासियों को भ्रमित किया जाता है, बहलाया-फुसलाया जाता है और षड्यंत्र करके धीरे-धीरे उन्हें उनकी जमीन से बेदखल कर दिया जाता है। विरोध करने वाले लोगों को डराया धमकाया जाता है तथा प्रारंभ में तीन लोगों की हत्या करवा दी जाती है। मरने वाले लोगों में महत्वपूर्ण नाम परमेश्वर सिंह पाहन का है जो भारतीय सेना में पूर्व हवलदार थे तथा वीर चक्र से सम्मानित थे। परमेश्वर सिंह पाहन दुमली बांध परियोजना का विरोध करने वाले दल का नेतृत्व कर रहे थे। पूँजीवादी ताकतें अपने रुतबे का प्रयोग करके पुलिस फायरिंग में उनकी हत्या करवा देती है तथा स्पष्टीकरण के रूप में नक्सली संगठनों के साथ उनका संबंध बताकर उन्हें दोषी बना देती है। सभ्य कहे जाने वाले समाज के लोग आदिवासियों को इंसान भी नहीं समझते। पत्रकारिता से जुड़े अमरेन्द्र मिश्रा भी पूँजीवादियों का साथ देते हैं तथा आदिवासियों की मृत्यु पर कहते हैं कि 'तीन कोले ही तो मरे हैं, मनुष्य नहीं।' किशनपुर एक्सप्रेस के पत्रकार किशन विद्रोही जब परमेश्वर पाहन की हत्या के मसले को सुलझाने हीराहातु जाते हैं तो वहाँ रिपोर्टर अमरेन्द्र मिश्रा उन्हें गुमराह करते हुए बाँध के फायदे गिनवाने लगता है। जिस दुमली बाँध परियोजना के कारण आदिवासियों का जीवन तबाह होने वाला है, उनके गाँव नष्ट होने वाले हैं, उनका समाज, संस्कृति तथा परिवार सब खतरे में आने वाला है उस बाँध परियोजना की विशेषताएँ बताते हुए अमरेन्द्र मिश्रा कहता है- "आप ही सोचिए सर कि दुमली नदी पर दो सौ करोड़ का बाँध। दो सौ करोड़ सर! यह तो अग्रवाल साहब की ग्रीन एनर्जी कंपनी की ही औकात थी सर। क्या नहीं है इस प्रोजेक्ट में? बिजली भी, नहर भी, फैक्टरी भी और खेतों के लिए पानी भी। विकास ही विकास। ये साले कोल्ह कहते हैं जान देंगे जमीन नहीं देंगे। दे दो जान। अभी तो तीने लोग मराया है।"[1] आदिवासी काश्तकारी कानून के अंतर्गत आदिवासियों से उनकी भूमि कोई गैर आदिवासी नहीं खरीद सकता था। इस कानून के लिये आदिवासी जनजातियों ने तीस वर्षों तक कड़ा संघर्ष किया था। "आदिवासियों ने 1767-70 के भूमिज आंदोलन से शुरू कर 1901 के बिरसा उलगुलान तक जो खून बहाए थे, उस पवित्र खून के कतरों से सींचकर एक कानून बना था 'आदिवासी काश्तकारी कानून।' इससे आदिवासी जमीनों को सुरक्षित कर दिया गया। वे गैर आदिवासियों को नहीं बेची जा सकती थी।"[2] लेकिन अधिकतर कानूनों की भाँति इस कानून में भी कमियाँ थी। जैसे कुछ शर्तें पूरी हो जायें तो जमीन ट्रांसफर की जा सकती थी। इनमें स्कूल-अस्पताल निर्माण से संबंधित जनहित के मामले शामिल थे। कानून की ये कमी आदिवासियों के लिए जानलेवा वायरस सिद्ध हुई। जमींदारों व पूँजीपतियों ने आदिवासियों पर कर्जखोरी का आरोप लगाकर न्यायालय के जरिए कर्ज के बदले आदिवासियों की जमीनों को प्राप्त कर लिया। धीरे-धीरे आदिवासी अपनी जमीनों से बेदखल होना शुरू हो गए। इस स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक कहते हैं- "आदिवासी जमीन के प्लॉट दिन दहाड़े गायब होते जा रहे थे। सो बंद तहखानों की तड़पती आत्माओं की कराह, चीख, रुदन की कोई राहत नहीं थी।"[3]

लेखक ने अपनी जमीन की रक्षा के लिए संघर्षरत मुंडा आदिवासियों के संघर्ष का सजीव चित्रण किया है तथा यह भी बताया है कि सभ्य समाज के पूँजीपति लोगों ने किस प्रकार बहला-फुसलाकर, छल-कपट से या डरा धमकाकर आदिवासियों से उनकी भूमि छीन ली। जिसने अपनी जमीन बचाने के लिए थोड़ा सा संघर्ष किया या विरोध करने की चेष्टा की उसकी आवाज को अप्रत्यक्ष रूप से दबा दिया गया। लेखक की इन बातों से इस प्रकार की घटनाओं की सत्यता उजागर होती है- "बारिश की धुन पर कई कहानियाँ भी सुनने को मिलती। न केवल गाँव की बल्कि शहर की भी। जबरिया जमीन हथियाने की कहानियाँ। जोजोडीह का बूढ़ा शनि मुंडा कैसे मुकदमा लड़ते-लड़ते पागल हो गया। हातमा बस्ती का रामेसर उरांव जमीन दलालों की धमकी-मारपीट-केस मुकदमा से इतना तंग आ गया कि जहर खा लिया।"[4]

लेखक की बातों से स्पष्ट है कि जो आदिवासी पूँजीपतियों के बहकावे में नहीं आये, उन्हें बल प्रयोग व दूसरे तरीकों से शांत करवा दिया गया। उपन्यास में आदिवासियों की बस्ती बलपूर्वक खाली करवाने से संबंधित एक घटना है। जब अंधेरी रात में कई ट्रक, बस व गाड़ियों में निरंजन बॉस के साथ पच्चीस-तीस हथियारबंद आदमी बस्ती खाली करवाने आए थे। निरंजन बॉस की धूर्तता का वर्णन करते हुए लेखक कहता है- "इन लोगों की नजर जिस जमीन, जिस टोला, जिस बस्ती पर पड़ गई, कोई-न-कोई उपाय लगाकर कब्जा लिया। धन से, छल से नहीं तो बल से। चाहे टाइम जितना लगे। उलिहातु, हिसीर, होलोंग, हेसल, गोंदा कितना नाम गिनायें। सबका हश्र तो यही हुआ। साहब-सुहबा सब इनकी पॉकेट में। विक्टर तिग्गा जैसे हमारे अगुआ भी इनका ही संगी। दिन में 'जान देंगे जमीन नहीं देंगे' का नारा हमारे संग, दिन ढलते दारू चखना इनके संग।"[5]

गाँव वालों को भी कहीं-न-कहीं इस बात का अंदेशा था कि निरंजन बॉस के आदमी बस्ती खाली करवाने आयेंगे। इसलिए वे लोग भी अपने हथियार, तीर-धनुष, बरछी-भाला लेकर आत्मरक्षा के लिए तैयार हो जाते हैं। दोनों गुट आपस में भिड़ जाते हैं। तब विद्रोही सर जिले के सीनियर एस० पी०, सिटी एस०पी०, जिला कलेक्टर, एस डी एम० आदि पूरे प्रशासन के साथ वहाँ पहुँच जाते हैं और निरंजन बॉस को निराश होकर वहाँ से लौटना पड़ता है। जब

पूँजीपति लोगों का बल प्रयोग करके जमीन हथियाने वाला तरीका सफल नहीं होता तो वे छल से आदिवासियों की जमीन प्राप्त कर लेते हैं। अशोक पोद्दार और सविता पोद्दार 'जय माता दी आदिवासी कल्याण संस्थान' की स्थापना करते हैं। कई प्रकार के स्वयं सहायता समूह बनाते हैं तथा साथ ही कई लघु उद्योगों जैसे मोमबत्ती उद्योग और मुर्गी पालन आदि की स्थापना करके मुंडा आदिवासियों को काम देते हैं। काम मिलने के बाद उनको लोन के चक्कर में उलझा देते हैं। पूँजीपतियों का यह दुश्चक्र भोले-भाले आदिवासियों को समझ नहीं आता। वे उनके षड्यंत्र में फँसते जाते हैं तथा बाइक, स्कूटी, मोबाइल, टी०वी०, रेफ्रीजेटर, वाशिंग मशीन आदि सब लोन पर खरीद लेते हैं। फिर एक बार अचानक से चोरी व गबन का आरोप लगाकर उनको काम से निकाल दिया जाता है। जिन उद्योगों व कारखानों में उनको काम दिया गया था, उनको तरह-तरह के बहाने बनाकर बंद कर दिया जाता है। नौकरी चले जाने के बाद सारी आदिवासी बस्ती कर्ज में डूब गई। लोन न चुकाए जाने के बाद उनकी बाइक, स्कूटी, मोबाइल, फ्रिज, टी०वी० आदि को जब्त कर लिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि बिना किसी बल प्रयोग के पूरी आदिवासी बस्ती सविता पोद्दार जैसे पूँजीपतियों के हाथों में चली गई। इस प्रकार लेखक ने उपन्यास में झारखंड के भू-माफियाओं द्वारा राजनीतिक व प्रशासनिक मिली-भगत से आदिवासियों की जमीन कब्जाये जाने का सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है।

मुंडा आदिवसियों का संघर्ष सिर्फ अपनी जमीनें बचाने के लिए नहीं है बल्कि उनका संघर्ष अपने समाज, संस्कृति, रीति-रिवाज तथा ऐतिहासिक धरोहर को बचाने के लिए भी है। इसका उदाहरण हमें उपन्यास के प्रथम अध्याय में ही देखने को मिल जाता है- "सरना वनस्पति जगत गायब हुआ, मरांग-बुरु बोंगा, पहाड़ देवता गायब हुए। गीत गाने वाली, धीमे बहने वाली, सोने की चमक बिखेरने वाली हीरों से भरी सारी नदियाँ जिनमे 'इकीर बोंगा'- जल देवता का वास था, गायब हो गई। मुण्डाओं के बेटे-बेटियाँ भी गायब होने शुरू हो गए। सोना लेकन दिसुम गायब होने वाले देश में तब्दील हो गया।"[6]

इसी प्रकार परमेश्वर पाहन की हत्या की गुत्थी को सुलझाने के लिए आदिवासियों के गाँव जाते किशन विद्रोही की भेंट जब जायसवाल नामक दुकानदार से होती है तो वह उन्हें आदिवासियों के संघर्ष के इतिहास का परिचय देता है। उसकी बातों से स्पष्ट होता है कि संघर्ष करना तो आदिवासियों के सामान्य जीवन का एक हिस्सा बन गया है। लेकिन स्वयं को सभ्य कहने वाले प्रशासन में बैठे लोग उनका सांस्कृतिक-ऐतिहासिक महत्व नहीं समझ सकते- "कंपनी और सरकारी अधिकारियों का तो लगता है यहाँ के इतिहास से परिचय ही नहीं है। क्यों जरूरी है इतना बड़ा बाँध कि मुण्डाओं के पूर्वज पित्रों द्वारा खुद जंगल काट कर बसाये गये गाँव, खूटकट्टी उनमें डूब जायें? मुण्डाओं की संस्कृति इतिहास डूब जाये? सरना ससान और ससानदिरी की समझ ही नहीं है। मृत मुण्डाओं के कब्र पर गाड़े गये पत्थरों पर उनका पूरा वंशवृक्ष लिखा रहता है। सैंकड़ों वर्षों के इतिहास दर्ज हैं सिसानदिरी के पत्थरों पर। बेतरतीब ढंग से नहीं गड़े हैं ये, इनके गाड़ने का भी अपना विज्ञान है।"[7]

वर्तमान समय का आदिवासी समाज दोहरे संघर्ष से गुजर रहा है। एक संघर्ष उस मानसिकता के विरुद्ध है जो उन्हें नीच, जंगली व असभ्य कहता है। इसमें रिपोर्टर अमरेन्द्र मिश्रा जैसे लोग शामिल हैं जो आदिवासियों की मृत्यु को इंसानों की मृत्यु तक नहीं समझते। दूसरा संघर्ष उन साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ है जो उनकी जल, जंगल व जमीन रूपी अमूल्य निधि पर अधिकार कर लेना चाहते हैं।

इनका एक और प्रसिद्ध उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' 2009 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास आदिवासियों की असुर जनजाति के ऊपर केंद्रित है। इसके माध्यम से लेखक ग्लोबल गाँव के व्यापारियों द्वारा असुर जनजाति के शोषण का वर्णन करते हैं। यह उपन्यास जहाँ आदिवासी समाज के अनदेखे सौंदर्य से हमारा परिचय करवाता है वहीं आदिवासी जीवन के संघर्ष से भी हमें अवगत करवाता है। इसमें झारखंड के असुर जनजाति के आदिवासियों की गाथा है जो अपनी नियति के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं। एक और इनके विरुद्ध ग्लोबल गाँव के देवता हैं तो दूसरी और सांसद व विधायक हैं। तीसरी और शिवदास बाबा जैसे धर्म के ठेकेदार भी हैं। इन तीनों के विरुद्ध संघर्ष कर रहे असुरों को अपनी नियति का आभास है अर्थात् उन्हें पता है कि वे जीत नहीं पायेंगे लेकिन फिर भी वे इस नियति को चुपचाप प्राप्त होना नहीं चाहते। वे अपने अस्तित्व व अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष करना चाहते हैं। अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपनी मूलभूत सांस्कृतिक विरासत के लिये लड़ना उन्हें हार मानने से अधिक श्रेयस्कर लगता है।

जिस भूमि पर वे रहते हैं उस भूमि पर बड़ी-बड़ी व्यापारी कंपनियों ने खुदाई करके खनिज पदार्थों को निकाला है और उन खनिजों की कमाई से सुंदर नगर बसाये जा रहे हैं। दूसरी तरफ आदिवासियों को दोयम दर्जे के मजदूर की जिंदगी जीने के लिए मजबूर किया जा रहा है। इस प्रकार उनका संघर्ष शोषणकारी लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रति है।

उपन्यास का कथावाचक एक अध्यापक है जो असुरों के क्षेत्र में बाहर से आया है। इसे उपन्यासकार का प्रतिनिधि भी कह सकते हैं। यह प्रतिनिधि न केवल असुरों के संघर्ष को देखता है बल्कि स्वयं को उनके संघर्ष में शामिल भी कर लेता है। अम्बाटोली गाँव में मास्टर जी की भेंट असुर समुदाय के एक व्यक्ति लालचन असुर से होती है जो दिखने में गोरा-चिट्टा है। उसे देखकर मास्टर जी के मन में बनी वो धारणा टूट जाती है जिसमें असुर काले-कलूटे भयानक राक्षसों के रूप में थे। मास्टर जी के माध्यम से लेखक ने आम लोगों के बीच फैली इस धारणा को तोड़ने का काम किया है। लालचन असुर के गोरे-चिट्टे रूप को देखकर मास्टर जी सोचते हैं- "सुना तो था कि यह इलाका असुरों का है, किंतु असुरों के बारे में मेरी धारणा थी कि खूब लंबे-चौड़े, काले-कलूटे, भयानक दाँत-वाँत निकले हुए, माथे पर सींग-वींग लगे हुए लोग होंगे। किंतु लालचन को देखकर सब उलट-पुलट हो रहा था। बचपन की सारी कहानियाँ उल्टी घूम रही थी।"[8]

असुर नाम सुनते ही भयानक छवि मन में आने के पीछे हमारा दोष नहीं है। इसका कारण महाभारत, रामायण, वैदिक साहित्य और पुराणों में किया गया उनका मिथकिकरण है। "प्रभुत्वशाली सत्ताएँ जिनका विनाश करना चाहती हैं, उनका पहले दानवीकरण करती हैं, फिर उन पर हमला करती हैं और बाद में उनकी जमीन तथा जीवन पर कब्जा करती हैं। भारत में यह प्रक्रिया वैदिक काल से लेकर आज तक चली आ रही है।"[9]

लेखक ने असुरों के प्रति लोगों की इसी संकुचित सोच को उजागर किया है। उपन्यास की कथावस्तु भौंरापाट व उससे सटे हुए कंदापाट और अम्बाटोली के इर्द-गिर्द घूमती है। लेखक ने असुर जनजाति के संघर्ष का वर्णन करने के साथ-साथ आदिवासी ग्रामीण जीवन की संस्कृति व रीति-रिवाजों का भी वर्णन किया है। असुर देवताओं से संबंधित उनकी अनेक प्रकार की कथाएँ तथा उन पर आधारित अनेक अंधविश्वास आदिवासी समाज में देखे जा सकते हैं। इस उपन्यास में असुर गाँव में प्रचलित कई प्रकार के अंधविश्वासों का वर्णन है। आज भी अनेक आदिवासी गाँवों में बलि प्रथा प्रचलित है। आदिवासी लोगों के

समाज में यह बात प्रचलित है कि बलि देने से उनके देवता प्रसन्न होंगे तथा उन पर अपनी कृपा बनाए रखेंगे। इसी प्रकार का एक अंधविश्वास असुर जनजाति में प्रचलित है जिसमें यह माना जाता है कि फसल बोते समय बीज में मनुष्य का रक्त मिलाकर बोने से अच्छी पैदावार होती है। उपन्यास में इसका वर्णन आता है– "दरअसल अब भी कुछ लोगों के मन में यह बात बैठी हुई है कि धान को आदमी के खून में सानकर बिछड़ा डालने से फसल बहुत अच्छी होती है।"[10] उपन्यास में कटिया नामक एक गाँव का वर्णन है जहाँ कुछ वर्ष पहले तक नर बलि प्रथा प्रचलित थी। लेखक ने आदिवासी ग्रामीण जीवन में साक्षरता जैसा विषय भी उपन्यास में उठाया है। असुर जनजाति में साक्षरता दर बिलकुल निम्न है। गाँव के आधे से ज्यादा बच्चे तो बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं, कुछ बच्चे किसी प्रकार स्कूल की पढ़ाई पूरी कर भी लेते हैं तो उच्च शिक्षा तक नहीं पहुँच पाते। उपन्यास में सुनील, सोमा, ललिता, भीखा व रुमझुम जैसे लोग ही हैं जो कुछ पढ़े-लिखे हैं। असुर जनजाति के बच्चों के अशिक्षित रह जाने का कारण यह नहीं है कि उनमें शिक्षा के प्रति ललक नहीं है, बल्कि यह है कि शिक्षा और नौकरी के क्षेत्र में अभी भी प्रत्येक स्थान पर उनके साथ भेदभाव जारी है। "भौंरापाट का स्कूल आदिवासी बालिकाओं के लिए खोला गया था किंतु उसमे पढ़ने वाली असुर बिरजिया बच्चों की संख्या दस प्रतिशत से अधिक नहीं थी। ज्यादातर बच्चे हेडमिस्ट्रेस और टीचर्स के गाँव के और उनकी ही जाति उरांव-खड़िया, खेखार परिवार के थे।"[11]

पाथरपाट में स्कूल का निर्माण करते समय सौ से अधिक असुर जनजाति के परिवारों को बेघर कर दिया गया था। किंतु पिछले तीस वर्षों से उस स्कूल में एक भी आदिवासी बच्चे को प्रवेश नहीं मिला था। साक्षरता के साथ-साथ आदिवासी स्त्रियों की स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है। स्वयं को आधुनिक व सभ्य कहे जाने वाले समाज में जो स्त्रियों की स्थिति है उससे कहीं अधिक बेहतर स्थिति आदिवासियों की असुर जनजाति में देखने को मिलती है। यहाँ औरत को कमजोर नहीं समझा जाता बल्कि समझदारी का प्रतीक माना जाता है। समाज की मुख्यधारा में स्त्री के लिये 'जनानी' शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका शाब्दिक अर्थ है– जन्म देने वाली। इस नाम से यह अनुमान किया जा सकता है कि समाज ने स्त्री को सिर्फ संतानोत्पत्ति की एक वस्तु समझा है। असुर जनजाति में स्त्री को जनानी न कहकर 'सयानी' कहा गया है जिसका अर्थ होता है समझदार स्त्री। असुर जनजाति की स्त्रियों का जीवन भी कम संघर्ष से भरा हुआ नहीं है। उपन्यास में बुधनी और ललिता जैसी युवतियों को अगर छोड़ दें तो ऐसी बहुत सारी स्त्रियाँ हैं जिनका बेरहमी से शोषण किया जाता है। उनकी देह नकली जेवरों को सजाने लगती है। ऐसी मजबूर असुर स्त्रियों के लिए उपन्यास में एक गीत है– 'मेठ संगे नजर मिलायले, मुंशी संग लासा लगयले, कचिया लोभे कुला डूबाले, रूपिया लोभे जात डूबाले।' एक तरफ बुधनी और ललिता जैसी स्त्रियाँ है जो आंदोलन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेती हैं तो दूसरी तरफ मजबूर आदिवासी महिलाएँ हैं जिनका सभी प्रकार से गैर आदिवासियों व धर्माधिकारियों द्वारा शोषण किया जाता है।

रणेंद्र का यह उपन्यास उन कमजोर आदिवासियों की आवाज है जो कई शताब्दियों से दबाई जा रही है। असुर आदिवासी अपनी अस्मिता की लड़ाई वैदिक काल से लड़ रहे हैं। सैंकड़ों ग्रन्थ व पुराण देवासुर संग्राम के वृतांतों से भरे पड़े हैं। लंबे समय से असुर देवताओं से लड़ते आ रहे हैं, हारते आ रहे हैं और पुनः जीवित होते आ रहे हैं। किंतु अब उनकी लड़ाई ग्लोबल गाँव के सर्वशक्तिमानों से है जिसमें उनकी हार निश्चित है और यह हार उनकी आने वाली पीढ़ियों के साथ-साथ उनकी संस्कृति, रीति-रिवाजों तथा उनके गौरवशाली इतिहास को भी समाप्त कर देगी।

निष्कर्ष के रूप में कहें तो रणेंद्र के उपन्यासों में हमें आदिवासी जीवन के विविध आयाम दिखाई देते हैं। एक तरफ उनके सामाजिक-धार्मिक रीति-रिवाजों के दर्शन होते हैं तो दूसरी तरफ अपनी सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा के लिए उनका संघर्ष दिखाई देता है। उनके उपन्यास आदिवासी अस्मिता का प्रश्न तो उठाते ही हैं साथ ही भूमण्डलीकरण से उत्पन्न साम्राज्यवाद के खतरे से भी हमें अवगत कराते हैं।

संदर्भ

1. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, सं. 2014, पृष्ठ संख्या 41
2. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, सं. 2014, पृष्ठ संख्या 77
3. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, सं. 2014, पृष्ठ संख्या 78
4. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, सं. 2014, पृष्ठ संख्या 84
5. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, सं. 2014, पृष्ठ संख्या 100
6. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, सं. 2014, पृष्ठ संख्या 03
7. रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, सं. 2014, पृष्ठ संख्या 50
8. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सं. 2009, पृष्ठ संख्या 11
9. शांडिल्य, सुंदरम्: आदिवासियों की वेदना और चेतना का नया पाठ, वाङ्मय आदिवासी विशेषांक-1, जुलाई 2013, पृष्ठ संख्या 183
10. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सं. 2009, पृष्ठ संख्या 12
11. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सं. 2009, पृष्ठ संख्या 20

Indexed Journal
Refereed Journal
Peer Reviewed Journal

www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232

Volume: 11 **Issue: 4** **Year: 2025**

International Journal of Hindi Research

Royal Publications

C-11, 169, Sector-3

Rohini, Delhi-110085, India

www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232

International Journal of Hindi Research

Editorial Board

Dr. Abha Tyagi M.A (Hindi, Sanskrit) Ph.D.
Head
Department of Hindi, Vaish Girls College, Samalkha, Panipat, Haryana, India

Dr. Bandana Jha Ph.D
Associate Professor
Department of Hindi, Vasanta College for Women, Varanasi, Uttar Pradesh, India

Dr. Ram P Dwivedi PhD
Associate Professor
Department of Hindi Journalism & Mass Communication, Bhim Rao Ambedkar College, Delhi, India

Dr. Patki Archana Chandrakantrao
M.A,SET,Ph.D
Assistant Professor
Department of Hindi,Nutan Mahavidyalaya,Sailu Dist.Parbhani (Maharashtra)India

Satyabhama Razdan M.A. Sanskrit, M.A. Linguistics, M. Phil, Ph. D., D. Lit.
Professor
University of Kashmir, Hazratbal, Srinagar Kashmir, Jammu & Kashmir, India

Dr. Vijay Ganeshrao Wagh
M.A.,M.phil.,B.Ed.,Ph.D.
Assistant Professor
Department of Hindi, Toshniwal Arts, Commerce & Science College, Sengaon. Dist-Hingoli-431513

Dr. Neerav Adalja PhD
Associate Professor
Dr. Bhim Rao Ambedkar College, University of Delhi, Wazirabad Rd, Yamuna Vihar, Shahdara, New Delhi, India

Dr. Rajesh Mishra Ph.D
Associate Professor
Hindi Department, Ghasidas Central University, Bilaspur, Chhattisgarh, India

Dr. V Anbumani M.A., M.Phil., Ph.D(Hindi), M.A(Economoics)., MBA(HR)., PGDSD., PGDT., PGDJ
Associate Professor
Department of Hindi and Other Languages, Kongu Arts and Science College, Erode, Tamil Nadu, India

Dr. Tanujarashmi Ph.D
Associate Professor
Department of Hindi Jain college C.G.S, V.V.Puram, Bangalore, India

S. Rajini MA, MPhil, (PhD-Hindi Literature), SLET
Associate Professor
Department of Hindi, Mahalashmi College of Arts and Science for Women Parutipattu, Avadi, Chennai Tamilnadu, India

Dr. T. J. Rekha Rani M.A, M.phil, P.hd
Associate Professor
Hindi Department,The English and Foreign Languages University, Hyderabad

Dr Sreenivasaiah R M A .M Phil. B Ed. Ph D.(LLB)
Professor
Department of Hindi, Jain University, Bangalore, India

Dr. G Vasanthi
Associate Professor
Department of SFLC-Hindi, Saveetha School of Engineering, SIMATS, Saveetha University, Chennai, Tamil Nadu, India

Dr. Rama Arya Ph.D.
Associate Professor
Department of Hindi, Jiwaji University, Gwalior, Madhya Pradesh, India

Dr. Chiluka Pusphalata PhD
Associate Professor
International level conference attended in Bangladesh

Dr. Ashok Tukaram Jadhav M.A. NET Ph.D
Associate Professor
Department of Hindi, Late Babasaheb Deshmukh Gorthekar College, Umri, Dist. Nanded, Maharashtra, India

Dr. Baliram Sambhaji Bhuktare M.A.Ph.D. Net.Jrf
Associate Professor
Head of the Department & Research Guide. Hindi Maharashtra Udayagir College, Udgir. Dist- Latur, Maharashtra, India

Dr. Umesh Chandra Shukla M.A.,Ph. D.
Associate Professor
Department of Hindi M.D.College S.S.Rao Rood Mangal Das Varma Chawk Paral, Mumbai, MAHARASHTRA, India

Rajni
Associate Professor
Hindi Department, Dr. Bhim Rao Ambedkar College, University of Delhi, New Delhi, India

International Journal of Hindi Research

Indexed Journal, Refereed Journal, Peer Reviewed Journal

ISSN: 2455-2232

Publication Certificate

This certificate confirms that **सचिन गौतम** has published article titled **रामचरितमानस में निहित जीवन-मूल्य और उनकी समकालीन प्रासंगिकता**.

Details of Published Article as follow:

Volume	:	**11**
Issue	:	**4**
Year	:	**2025**
Page Number	:	**158-161**
Reference No.	:	**11157**
Published Date	:	**25 Dec, 2025**
Impact Factor.	:	**RJIF-8**

Regards
International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
hindi.manuscript@gmail.com
+91-9999888671

International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 11-11-2025, Accepted: 10-12-2025, Published: 25-12-2025
Volume 11, Issue 4, 2025, Page No. 158-161

रामचरितमानस में निहित जीवन–मूल्य और उनकी समकालीन प्रासंगिकता

सचिन गौतम[1], डॉ. शर्मिला[2]
[1] शोधार्थी, हिंदी विभाग, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा, भारत
[2] सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा, भारत

सारांश
गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस भारतीय समाज, संस्कृति और आस्था का एक अमूल्य ग्रंथ है। यह न केवल भक्ति का प्रतीक है, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक और पारिवारिक मूल्यों का एक जीवंत दस्तावेज भी है। तुलसीदास ने अपने समय की सामाजिक और धार्मिक विसंगतियों को समझते हुए इस ग्रंथ के माध्यम से लोकमंगल की भावना को केंद्र में रखा। वर्तमान समय में जब समाज अनेक प्रकार की समस्याओं जैसे नैतिक पतन, पारिवारिक विघटन, सामाजिक असहिष्णुता, और राजनीतिक भ्रष्टाचार से जूझ रहा है, रामचरितमानस अधिक प्रासंगिक हो उठता है।
रामचरितमानस में राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वे एक आदर्श पुत्र हैं जो पिता के वचन के लिए वनवास स्वीकार करते हैं, एकपत्नीव्रती पति हैं, आदर्श मित्र हैं और प्रजा के कल्याण हेतु समर्पित राजा भी हैं। राम के जीवन से यह शिक्षा मिलती है कि मर्यादा और धर्म का पालन ही व्यक्ति को श्रेष्ठ बनाता है। तुलसीदास ने धर्म को जीवन के हर क्षेत्र से जोड़ा है– कृमित्रता, पुत्र धर्म, भ्रातृ धर्म, राज धर्म, दाम्पत्य धर्म आदि।
तुलसी ने राम और सीता के माध्यम से पति–पत्नी संबंधों की मर्यादा और प्रेम को दर्शाया है। वे नारी के पतिव्रत धर्म के साथ–साथ पुरुष के पत्नीव्रत धर्म की भी बात करते हैं। राम का एकपत्नी व्रत और सीता का समर्पण भाव आज के समय में पारिवारिक मूल्यों के क्षरण को रोकने में मार्गदर्शक हो सकता है। रामराज्य की कल्पना तुलसीदास का एक महान सामाजिक–राजनीतिक योगदान है। रामराज्य में प्रजा सुखी है, धर्म की स्थापना है, दैहिक–दैविक–भौतिक तापों से मुक्ति है और सब एक–दूसरे के प्रति प्रेम भाव रखते हैं। यह आदर्श शासन व्यवस्था आज के लोकतंत्र के लिए प्रेरणा है। तुलसीदास ने उस समय की अराजक शासन व्यवस्था की आलोचना करते हुए रामराज्य के रूप में एक वैकल्पिक मॉडल प्रस्तुत किया।
तुलसीदास की एक अन्य विशेषता उनका समन्वयवादी दृष्टिकोण है। उन्होंने शैव और वैष्णव संप्रदायों के बीच एकता स्थापित करने का प्रयास किया। रामचरितमानस में शिव और राम के आपसी सम्मान का वर्णन करके उन्होंने धार्मिक सद्भाव का संदेश दिया। यह समन्वय चेतना आज के धार्मिक विभाजन के समय में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है। रामचरितमानस में निहित मूल्य जैसे– परोपकार, सहिष्णुता, कर्तव्यपरायणता, सत्य, प्रेम और समर्पण आज के समय में खोते जा रहे हैं। इस ग्रंथ के माध्यम से तुलसीदास ने एक ऐसे समाज की कल्पना की है जहाँ सबके कल्याण की भावना हो और जहाँ व्यक्ति स्वयं के साथ–साथ समाज के हित को भी महत्व दे।
रामचरितमानस केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि एक संपूर्ण जीवनशास्त्र है। आज जब समाज अनेक स्तरों पर विघटन और भ्रम का शिकार है, तब यह ग्रंथ हमें संयम, नैतिकता, और समरसता की प्रेरणा देकर एक आदर्श समाज के निर्माण की दिशा दिखाता है। इसकी प्रासंगिकता आज के समय में पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है।

मूल शब्दः गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, भारतीय समाज, संस्कृति और आस्था, भक्ति, सामाजिक मूल्य, नैतिक मूल्य

प्रस्तावना

साहित्य समाज का दर्पण भी होता है और दीपक भी। दर्पण इसलिए कि वह समाज की विसंगतियों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करके हमें नींद से जगाता है और दीपक इसलिए कि उन समस्याओं या विसंगतियों के समाधान का मार्ग भी प्रशस्त करता है। साहित्य की इसी विशेषता के कारण उसका संबंध लोकमंगल की साधनावस्था से जुड़ता है। हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक रामभक्ति काव्य की एक लंबी परम्परा रही है। भक्तिकाल में रामभक्ति काव्य को इस परम्परा का चरमोत्कर्ष कहा जा सकता है। इसी काल में प्रसिद्ध रामभक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास जी हुए। उनके द्वारा रचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' अपने पूर्ववर्ती व परवर्ती काव्यों से सर्वश्रेष्ठ रामकाव्य है। तुलसीदास कृत रामचरितमानस नैतिक व मानवीय मूल्यों को सूक्ष्मता से धारण किए हुए है। तुसलीदास का काव्य लोकमंगल का काव्य है और रामचरितमानस लोकमंगल की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ काव्य है। तुलसीदास ने स्वयं माना है कि कविता या साहित्य वही श्रेष्ठ है जो गंगा के समान सर्वजन का कल्याण करने वाला हो –

"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।"[1]

तुलसीदास ने मानस के माध्यम से भारतीय जनमानस में जहाँ भक्ति की पावन धारा प्रवाहित की वहीं मानस के विभिन्न पात्रों के माध्यम से उदात्त पारिवारिक जीवन मूल्यों व आदर्शों को स्थापित किया। राम के चरित्र के माध्यम से इन्होंनें सबसे अधिक बल मर्यादा पर दिया। राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। वे एक आदर्श शिष्य हैं जो अपने गुरु की प्रत्येक आज्ञा का पालन करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं। वे एक आदर्श पुत्र हैं जो पिता के वचन को निभाने के लिए चौदह वर्ष का वनवास स्वीकार करते हैं। वे एकपत्नीव्रत धारी हैं, वे आदर्श मित्र हैं, आदर्श राजा हैं। प्रजा के कल्याण के लिए वे अपने जीवन के व्यक्तिगत सुखों का त्याग कर देते हैं। राम के चरित्र के माध्यम से तुलसीदास संदेश देते हैं कि मर्यादा ही व्यक्ति का सच्चा आभूषण है। मर्यादविहीन जीवन मनुष्य के लिए निरर्थक है। मानस में वे लिखते हैं –

''नीति प्रीति यश–अयश गति, सब कहँ शुभ पहचान,
बस्ती हस्ती हस्तिनी देत न पति रति दान।''[2]

अर्थात् जहाँ हाथिनी भी हाथी को गाँव से बाहर जाकर रति दान करती है, वहाँ मनुष्य को तो मर्यादा व संयम में रहना ही चाहिए। तुलसीदास ने मानस में स्थान–स्थान पर इस बात का उल्लेख

किया है कि मनुष्य के जीवन में धर्म अत्यंत आवश्यक है। वे धर्म को एक जीवन मूल्य मानते हैं जिसको धारण किए बिना मनुष्य के आपसी संबंध, व्यवहार, भाव या मर्यादा आदि कुछ भी निर्मित नहीं हो सकते। मित्रता में धर्म का महत्व समझते हुए वे कहते हैं कि मित्रता तभी निभाई जा सकती है जब मित्रता के मूल्य अर्थात् धर्म को निभाया जाए–

"जे न मित्र दुःख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।
निज दुः ख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुःख रज मेरु समाना।।"[3]

दुख या विपत्ति के कठिन समय में भी जो व्यक्ति मित्रता के धर्म का निर्वहन करे, वही सच्चा मित्र है। राम और सुग्रीव तथा हनुमान, विभीषण, अंगद आदि की मित्रता के माध्यम से उन्होंनें इस बात को पुष्ट किया है। इसी प्रकार पुत्र धर्म के निर्वाह का जैसा चित्रण मानस में है वैसा कहीं अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। तुलसी के अनुसार पिता की आज्ञा मानना पुत्र का धर्म है और यह धर्म सभी धर्मों से उच्च है–

"जो पितु मातु कहेउ बन जाना, तो कानन सत अवध समाना।"[4]

भारत लक्ष्मण और शत्रुघ्न के माध्यम से उन्होंनें भ्रातृधर्म की व्याख्या की है। रामचरितमानस में प्रत्येक स्थान पर मानवीय मूल्यों की व्याख्या धर्म के रूप में है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि तत्कालीन समय में भारतीय जानता का एक बड़ा वर्ग धर्म के साथ गहराई से जुड़ा हुआ था। अतः धर्म के माध्यम से और धार्मिक चरित्रों के माध्यम से सर्वसाधारण में मानवीय और नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करना सरल कार्य था। तुलसी ने आम जनमानस की भाषा का प्रयोग करते हुए इस कार्य में जो सफलता हासिल की, वह बाद में किसी को नहीं मिल पाई। तुलसी द्वारा स्थापित ये जीवन मूल्य तत्कालीन समय में जितने महत्वूर्ण रहे, उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण वर्तमान समय में हो गए हैं। वर्तमान में दिन प्रतिदिन टूट रहे संयुक्त परिवार, स्त्री–पुरुष संबंध, गुरु–शिष्य संबंध इस बात का प्रमाण हैं। ये सब समस्याएँ इसलिए आ रही हैं क्योंकि मनुष्य अपने जीवन में धर्म व नैतिक मूल्यों को धारण नहीं कर पा रहा है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस में राम के स्थितप्रज्ञ रूप का चित्रण किया है। स्थितप्रज्ञ वह है जिसके लिए सुख और दुःख समान अवस्था हों। हालाँकि सुख–दुःख जीवन का यथार्थ हैं। दुखों से मुक्ति संभव नहीं है। संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जिसे दुखों का सामना न करना पड़ता हो। साधारण व्यक्ति जीवन में क्षणिक सुखों के आगमन से बहुत अधिक खुश व उत्साहित हो जाते हैं तथा जीवन के कठिन समय में बहुत अधिक निराश व हतोत्साहित हो जाते हैं। राम के जीवन में भी सुख–दुःख निरंतर आते–जाते रहते हैं। न तो वे कभी सुख में बहुत अधिक प्रसन्न हुए न कभी दुख में घबराए। वह दोनों ही स्थितियों में सम्यक् बने रहे। इसीलिए उन्हें स्थितप्रज्ञ कहा गया। ज्ञानी व्यक्ति का जीवन ऐसा ही होता है। उसका जीवन सदैव पर हित के लिए समर्पित होता है। तुलसीदास कहते हैं –

"परहित लागि तजई जो देहि, संतत संत प्रसंसहि तेहि।"[5]

वर्तमान समय में जब आधुनिकीकरण की दौड़ में मनुष्य विज्ञान एवं तकनीक के विकास के करण धैर्यशून्य हो गया है। आधुनिकता के संसाधनों ने उसके जीवन को इतना आरामदायक बना दिया है कि वह एक क्षण का भी दुख सहन करने में सक्षम नहीं है। साथ ही जीवन में थोड़ा सा दुख आते ही वह स्वयं को सृष्टि का नियामक समझने लगता है। परिणामतः दुख की अवस्था आने पर मनुष्य अवसादग्रस्त हो जाता है। राम का जीवन मनुष्य के लिए संदेश है कि अगर वह समयक् जीवन जिए तो उसके लिए सांसारिक विषय विकारों से मुक्ति सरल हो जाती है। तुलसी ने मानस में राम–सीता व अन्य पात्रों के माध्यम से पति–पत्नी संबंधों के आदर्श रूप को भी स्थापित करने का प्रयास किया है। उन्होंने राम–सीता के साथ–साथ शिव–पार्वती, राजा दशरथ और उनकी रानियाँ, रावण–मंदोदरी तथा मनु–सतरूपा आदि के माध्यम से पति व पत्नी के कर्तव्यों का वर्णन किया है। तुलसीदास की विशेषता यह है कि उन्होंनें मानस में न सिर्फ स्त्री के पतिव्रत धर्म की बात की है बल्कि पुरुष के पत्नीव्रत धर्म की भी बात की है। सीता से विवाह होने पर राम एक प्रण लेते हैं कि वे एकपत्नीव्रत धर्म का पालन करेंगे। उन्होंनें बाकी राजाओं की तरह कई–कई विवाह नहीं किए। तुलसीदास लिखते हैं कि एक लड़की को माता–पिता, भाई–बहन तथा सगे–संबंधी एक सीमा तक ही सुख प्रदान कर सकते हैं। विवाह के पश्चात उसके सारे सुख–दुख पति के साथ जुड़ जाते हैं। अतः पत्नी को पति की सच्चे मन से सेवा करनी चाहिए तथा एक पति को भी अपनी पत्नी का ध्यान ऐसे ही रखना चाहिए जैसे उसके माता–पिता और भाई–बहन रखते थे। तुसलीदास लिखते हैं –

"मात पितु भ्राता हितकारी, मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।
अमित दानि भर्ता बयदेही, अधम सो नारि जो सेव न तेहि।।"[6]

सीता और अनुसुईया के वार्तालाप के माध्यम से तुलसीदास कहते हैं कि इस संसार में वही नारी श्रेष्ठ है जो अपने पति के चरणों में तन, मन और वचन से स्वयं को समर्पित कर देती है। इसी प्रकार का आचरण एक पति का भी अपनी पत्नी के लिए होना चाहिए–

"एकई धर्म एक व्रत नेमा।
कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।।"[7]

जब राम को चौदह वर्ष का वनवास होता है और वह वन में जाते हैं तब सीता उन्हें कहती है कि हे प्राणनाथ! यहाँ अयोध्या के राजमहल में मुझे भले ही सभी प्रकार के सुख और आनंद मिलें, आपके बिना वे सभी सुख और आनंद मेरे लिए दुख के समान हैं। अर्थात् राम के बिना स्वर्ग भी सीता के लिए नर्क के समान है। इस प्रकार तुलसी यह संदेश देना चाहते हैं कि सुख और दुख प्रत्येक परिस्थिति में पति–पत्नी को एक दूसरे का सहारा बनना चाहिए। इस संबंध में वे लिखते हैं –

"प्राणनाथ करुणायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम बिनु रघुकुल कुमुद विधु सुरपुर नरक समान।।"[8]

इसी प्रकार रावण–मंदोदरी संवाद के माध्यम से उन्होंनें एक पत्नी के कर्तव्य का भी वर्णन किया है। तुलसी का मानना है कि एक पत्नी का धर्म है अपने पति को सद्मार्ग से भटकने से रोकना और उसे सत्य का मार्ग दिखाना। जब मंदोदरी को ज्ञात होता है कि राम सेना सहित समुद्र पार आ गए हैं तो वे अपने पति, पुत्रों व नगर की सुरक्षा से चिंतित होकर रावण को समझती हैं कि राम कोई साधारण पुरुष नहीं, स्वयं नारायण हैं। आप अपना विरोध त्यागकर उन्हें अपने हृदय में धारण पर लीजिए जिससे हमारा और समस्त नगरी का कल्याण हो सके। मंदोदरी कहती है–

"जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई।
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी।।
रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी।
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरह।।"[9]

इस प्रकार रामचरितमानस में तुलसीदास ने दाम्पत्य जीवन के जिन आदर्शों को स्थापित किया था, वे तत्कालीन समय में तो महत्वूर्ण थे ही, साथ ही वर्तमान समय में टूटते स्त्री पुरुष संबंधों के दृष्टिकोण से और भी अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं।

रामचरितमानस की रचना का मुख्य उद्देश्य लोकमंगल की कामना है। तुलसीदास मनुष्य के साथ–साथ प्रत्येक प्राणी के मंगल की कामना करते हैं। मानस में वे लिखते हैं–

"पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर।।"[10]

अर्थात् प्राणिमात्र का कल्याण करने से बड़ा कोई धर्म नहीं है और किसी को पीड़ा पहुँचाने से बड़ा कोई अधर्म नहीं है। यह बात समस्त वेद–पुराणों का निचोड़ है। वर्तमान समय में लोकतंत्र में हमें जो विचार दिखाई देते हैं लगभग वही विचार रामचरितमानस में रामराज्य के माध्यम से स्थापित करने का प्रयास किया गया है। रामराज्य का शासन लोक का शासन है जहाँ छल, कपट, दंभ, विद्वेष, अत्याचार व अनाचार का अंत व सर्वत्र शान्ति और समानता की स्थापना की बात की गई है –

''बैर न काहू सन कोई, राम राज्य विषमता खोई।''[11]

तुलसीदास ने रामराज्य के माध्यम से एक राजा के कर्तव्य का भी वर्णन किया है। उनके अनुसार एक राजा को अपनी प्रजा को अपनी संतान के समान मानकर उनका रक्षण करना चाहिए। जिस राजा के शासन में प्रजा दुखी हो वह राजा अवश्य ही नर्क का अधिकारी होता है–

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी।"[12]

मानस में हम राम के उस रूप को देखते हैं जो प्रजा के कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हैं। चौदह वर्ष के वनवास में उन्होंने सामान्य व्यक्ति के जीवन में आने वाले सभी दुखों व कष्टों का अनुभव किया था। इसीलिए राम जब जब राजा बने तो उन्होंने प्रजा के दुख दर्द को समझते हुए एक पिता के समान उनका संरक्षण किया।

तुलसीदास का समय राजनीतिक दृष्टि से अराजकता का समय था। इस्लामी शासक प्रजा पर भाँति–भाँति के अत्याचार कर रहे थे। प्रजा के सुख–दुख से दूर–दूर तक उनका कोई संबंध नहीं था। इसी को ध्यान में रखते हुए तुलसी ने तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए दुराचारी व अत्याचारी राजा की आलोचना की तथा राम के माध्यम से एक आदर्श राजा का चरित्र प्रस्तुत किया। रामराज्य की खुशहाली व समृद्धि के माध्यम से उन्होंनें एक ऐसे आदर्श राज्य की कल्पना की जहाँ सभी व्यक्ति तथा प्राणीमात्र सुख–शांति से अपना जीवन व्यतीत करें। किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कोई दैहिक, दैविक व भौतिक कष्ट न हो। तुलसी लिखते हैं –

"दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।"[13]

तुलसीदास के समय में जो समस्याएँ विद्यमान थी, लगभग वही समस्याएँ वर्तमान समय में भी विद्यमान हैं। वे तत्कालीन समय में व्याप्त गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार आदि समस्याओं से चिंतित थे। इन सभी समस्याओं का समाधान उन्होंने रामराज्य के माध्यम से दिया है। रामराज्य में तुलसी ने जिन आदर्शों की कल्पना की है, वे आदर्श वर्तमान समय की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। तुलसीदास कृत रामचरितमानस की सर्वाधिक प्रासंगिकता इसमें निहित समन्वय चेतना के कारण है। इसी के आधार पर तुलसीदास समन्वय चेतना के महान कवि हैं। उन्होंनें धर्म, राजनीति, समाज, साहित्य, परिवार आदि सभी क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया और तत्कालीन समय में व्याप्त अधर्म, अनाचार, अशांति, वैमनस्य, पारस्परिक विद्वेष आदि को दूर करने का भी सफल प्रयास किया। रामराज्य में दुर्बल व शक्तिशाली दोनों आपस में मिल जुल कर प्रेम से रहते हैं। सभी व्यक्तियों की इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। प्रकृति भी प्रजा के कल्याण में सहायक है –

"फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।"[14]

रामचरितमानस में राम के माध्यम से उन्होंनें शैव– वैष्णव विवाद को भी सुलझाने का प्रयत्न किया है। राम कहते हैं –

"सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।।"[15]

अर्थात् जो वैष्णव स्वयं को मेरा भगत कहता है और शिव का विरोधी है, वह मनुष्य मुझे स्वपन में भी प्रिय नहीं है। तुलसी के समय में हिंदू धर्म विभिन्न सम्प्रदायों में बँटा हुआ था। प्रत्येक संप्रदाय के लोग स्वयं को श्रेष्ठ व दूसरे संप्रदाय को निम्न दिखाने के प्रयास में रहते थे। तुलसीदास ने शिव व राम के चरित्रों द्वारा लोगों के इस भ्रम को तोड़ा की शिव व राम एक दूसरे के विरोधी हैं। ऐसी समस्या वर्तमान समय में भी विस्तृत रूप में व्याप्त है। विभिन्न धर्मों में आपसी विद्वेष तथा एक ही धर्म के विभिन्न संप्रदायों में आपसी विरोध सामान्यतः देखा जा सकता है। ऐसे समय में रामचरितमानस की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है। मानस में व्याप्त तुलसी की इसी समन्वय चेतना के कारण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तुलसीदास को समन्वय का महान कवि और इनके काव्य को समन्वय की विराट चेष्टा कहा –

"लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके क्योंकि भारतीय जानता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार, निष्ठा और विचार प्रचलित हैं। तुलसी का सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, ज्ञान और भक्ति का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वयय; रामचरितमानस शुरू से आखिर तक समन्वय की विराट चेष्टा है।''[16]

वर्तमान समय में विचारधारात्मक अंतर्द्वंद्व, जटिलताएँ और मानव जीवन की विसंगतियां मनुष्य को निरंतर उद्वेलित कर रही हैं। भक्तिकाल में रामचरितमानस में राम का जो स्वरूप द्वंद्वातीत, शाश्वत मूल्य के प्रतिरूप तथा सच्चिदानंदन परब्रह्म के रूप में था वह स्वरूप वर्तमान जीवन की जटिलताओं व विसंगतियों के समक्ष एक समाधान के रूप में हमारे सामने आता है।

तुलसी ने रामचरितमानस के माध्यम से जिस विचार या सिद्धांत की स्थापना की वह समस्त मानव जाति के कल्याण से संबंधित है। वर्तमान समाज नैतिक अधोपतन व सामाजिक विषमता से पीड़ित होता जा रहा है। कवि को अपने समय की सामाजिक स्थिति के माध्यम से वर्तमान समाज की इन विसंगतियों का

पूर्वाभास हो गया था। वे रामचरितमानस में न केवल इन समस्याओं का चित्रण करते हैं बल्कि इनसे मुक्ति का मार्ग और निदान भी प्रस्तुत करते हैं। तुलसीदास द्वारा स्थापित राम का चरित्र बड़े ही सकारात्मक रूप में उभरकर हमारे सामने आता है। रामराज्य के माध्यम से उन्होंनें जिन सिद्धांतो व आदर्शों की स्थापना की है वह बाद के समय के लिए अनुकरणीय बन जाते हैं। महात्मा गांधी की अंतिम रूप से राज्य विहीन समाज की स्थापना तुलसीदास के इसी विचार से प्रेरित प्रतीत होती है।

तुलसी के राम का चरित्र जहाँ नवीन मर्यादा को स्थापित करता है, वहीं पारंपरिक व रूढ़िवादी मान्यताओं का खंडन भी करता है। राम उन सभी मान्यताओं का खंडन करते दिखाई देते हैं जो राजकुल में एक परम्परा के रूप में हमें दिखाई देती हैं। एकपत्नीव्रत धर्म का नियम लेकर वे राजपरिवारों में प्रचलित बहुपत्नी प्रथा का खंडन करते हैं। राम गुरुकुल में रहते हुए गुरु आज्ञा का पालन करते हुए कठिन श्रम करते हैं और आदर्श शिष्य का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार वे प्रजा में एक युवराज के रूप में इतने प्रिय थे कि राजगद्दी व शासन आसानी से उन्हें मिल जाता। वे चाहते तो यह कहकर वनवास जाने से मना भी कर सकते थे कि पिता के दिए वचन के लिए वे उत्तरदायी नहीं हैं। परन्तु फिर भी उन्होंने पिता के वचन का सम्मान रखा और चौदह वर्ष वनवास स्वीकार सकते हुए एक आदर्श पुत्र का उदाहरण प्रस्तुत किया।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वर्तमान समाज को रामचरितमानस के सभी सिद्धांत व आदर्शों को अपनाने की आवश्यकता है ताकि एक सभ्य समाज का निर्माण किया जा सके। रामचरितमानस सिर्फ एक धार्मिक ग्रंथ नहीं है बल्कि मानव जीवन की एक सम्पूर्ण पाठशाला है। वर्तमान समय में जब समाज असहिष्णुता, हिंसा, भ्रष्टाचार, नैतिक पतन आदि समस्याओं से जूझ रहा है, ऐसे समय में यह ग्रन्थ हमें सहिष्णुता, सच्चाई, प्रेम और कर्तव्य के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। समन्वय की अवधारणा लिए हुए वार्मन समाज में और भविष्य में भी रामचरितमानस की प्रासंगिकता सदैव बनी रहेगी।

संदर्भ

1. श्री रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार (हनुमान प्रसाद पोद्दार), बालकाण्ड, पृष्ठ संख्या 35
2. आर्येन्दु अखिलेश, रामचरितमानस में मानव मूल्यों का चित्रण एवं स्थापना, जय विजय पत्रिका
3. श्री रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार (हनुमान प्रसाद पोद्दार), किष्किंधा कांड, पृष्ठ संख्या 687
4. श्री रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार (हनुमान प्रसाद पोद्दार),अयोध्या कांड, पृष्ठ संख्या 390
5. श्री रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार (हनुमान प्रसाद पोद्दार), बालकाण्ड, पृष्ठ संख्या 98
6. श्री रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार (हनुमान प्रसाद पोद्दार), अरण्यक कांड, पृष्ठ संख्या 625
7. श्री रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार (हनुमान प्रसाद पोद्दार), अरण्यक कांड, पृष्ठ संख्या 625
8. श्री रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार (हनुमान प्रसाद पोद्दार), अयोध्या कांड, पृष्ठ संख्या 397
9. श्री रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार (हनुमान प्रसाद पोद्दार), सुन्दर कांड, पृष्ठ संख्या 747
10. श्री रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार (हनुमान प्रसाद पोद्दार), उत्तरकांड, पृष्ठ संख्या 948
11. श्री रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार (हनुमान प्रसाद पोद्दार), उत्तरकांड , पृष्ठ संख्या 930
12. श्री रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार (हनुमान प्रसाद पोद्दार), अयोध्या कांड, पृष्ठ संख्या 402
13. श्री रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार (हनुमान प्रसाद पोद्दार), उत्तरकांड, पृष्ठ संख्या 930–931
14. श्री रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार (हनुमान प्रसाद पोद्दार), उत्तरकांड, पृष्ठ संख्या 932
15. श्री रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, टीकाकार (हनुमान प्रसाद पोद्दार), लंकाकांड, पृष्ठ संख्या 774
16. द्विवेदी हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या 101

संत साहित्य और सामाजिक समरसता

सचिन गौतम

15वीं-16वीं शताब्दी का समय भारत में राजनीतिक अराजकता का समय था। इस्लामी आक्रांताओं के आगमन से उथल-पुथल, युद्ध, संघर्ष और अशांति का वातावरण बना हुआ था। इस समय में कई राजवंश सिंहासनारूढ़ हुए तथा कई राजवंशों का समूल विनाश हो गया। राजनीतिक अस्थिरता के कारण तथा समाज में आयी धर्मजनित कुरीतियों के कारण सामाजिक व्यवस्था भी डगमगा गयी। इस समय दो बड़ी समस्याएँ अपने चरम पर थीं—जाति-व्यवस्था से उपजी अस्पृश्यता / छूआछूत तथा धार्मिक विकृति से उपजी सांप्रदायिकता। जिस समाज के संचालन के लिए जाति-व्यवस्था को स्थापित किया गया था, इसका वह उद्देश्य न रहकर यह समाज के खंडन का कारण बन गयी। समाज में जाति के आधार पर ऊँच-नीच की भावना इतनी अधिक फैल गयी थी कि समाज के तथाकथित उच्च जाति के लोग समाज की निम्न कही जाने वाली जातियों के व्यक्तियों की परछाई तक से घृणा करते थे। जातीय अहम् इतना अधिक हावी हो गया था कि उच्च जाति के लोग स्वयं को सर्वश्रेष्ठ समझने लगे थे। निम्न जातियों के लोगों को उन्होंने सामाजिक, धार्मिक अधिकारों से वंचित रखा। भारतवर्ष की जो सामाजिक सद्भाव और सामाजिक समरसता की परंपरा थी, वह लुप्त हो चुकी थी। उपनिषदों में वर्णित 'वसुधैव कुटुंबकम्'[1] की जो भावना थी, उसके स्थान पर सामाजिक तुष्टिकरण होता हुआ दिखायी दे रहा था। हिंदू और मुस्लिम के नाम पर दिन-प्रतिदिन झगड़े बढ़ रहे थे। धर्म का स्थान सांप्रदायिकता ने ले लिया था। लोग धर्म के वास्तविक स्वरूप व अर्थ को भूल चुके थे। कर्मकांडी

ब्राह्मणों व मुल्लाओं द्वारा अपने स्वार्थ के लिए बनाये गये नियमों व पुस्तकीय ज्ञान को ही वे धर्म मान बैठे थे। नैतिक मूल्य धारण करने के स्थान पर कट्टरता की ओर अग्रसर थे।

ऐसे समय में भारतवर्ष में एक ऐसा क्रांतिकारी आंदोलन हुआ, जिसने पूरे भारत के इतिहास को बदलकर रख दिया। इस आंदोलन को 'भक्ति आंदोलन' का नाम दिया गया जो भारतीय इतिहास का दूसरा सबसे बड़ा आंदोलन था। प्रथम आंदोलन छठी शताब्दी ईसा पूर्व में महात्मा बुद्ध के समय में हुआ। उस समय भी आंदोलन का कारण धर्म में आयी विकृतियों के परिणामस्वरूप उसका भ्रष्ट व अनैतिक हो जाना था। प्रथम आंदोलन का संबंध धार्मिक कुरीतियों से अधिक व सामाजिक विषमता से कम था। जबकि भक्ति आंदोलन का संबंध सामाजिक कुरीतियों से भी उतना ही था जितना कि धार्मिक कुरीतियों व अंधविश्वासों से था। भारत के इतिहास में इस आंदोलन को भक्ति आंदोलन के नाम से जाना गया तथा 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में इस काल को 'भक्तिकाल' के नाम से जाना गया। इस आंदोलन का प्रारंभ दक्षिण भारत से हुआ और रामानंद जैसे संतों के द्वारा यह परंपरा उत्तर भारत में फैली। इस संबंध में कहा जाता है–

भगति द्रविड़ उपजी लाये रामानंद।
परगट किया कबीर ने सात द्वीप नौ खंड।।''

भक्तिकाल में भक्ति की दो धाराएँ एक साथ प्रवाहित हुईं–निर्गुण भक्ति काव्यधारा और सगुण भक्ति काव्यधारा। उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन के प्रारंभ व विस्तार का श्रेय निर्गुण भक्ति काव्यधारा की संत परंपरा के संतों को जाता है। इस परंपरा में कबीर, नानक, रैदास, दादू दयाल, सुंदरदास, नामदेव, धन्ना आदि संत शामिल थे। मुख्यतः सभी संत कवि समाज की निम्न समझी जाने वाली जातियों से संबंधित थे। सामाजिक असमानता व जाति उत्पीड़न जैसी समस्याओं को इन्होंने स्वयं झेला था। यही कारण था कि इनके विरोध के परिणामस्वरूप इनके मुख से जो शब्द निकले उन्होंने विद्रोह का रूप धारण कर लिया। अधिकांश संत कवि पढ़े-लिखे नहीं थे क्योंकि उस समय निम्न वर्ग को शिक्षा का अधिकार नहीं था। भले ही शिक्षित न रहे हों किंतु वह जागरूक अवश्य थे। अपने समय की सामाजिक बुराइयों, धार्मिक अंधविश्वासों और रूढ़ियों का खंडन करके इन्होंने सामाजिक समरसता स्थापित करने का प्रयास

किया। इन्होंने गाँव-गाँव जाकर अपनी वाणियों के माध्यम से जन साधारण को जागरूक करने का प्रयास किया। इन्होंने अपने उपदेश व वाणियाँ आम बोलचाल की भाषा में कही जिसे साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी बड़ी आसानी से समझ सकता था।

कबीरदास व रैदास का संबंध काशी से था। तत्कालीन समय में धार्मिक अंधविश्वास व सांप्रदायिकता काशी में सबसे ज्यादा विद्यमान् थी। धर्म के नाम पर अपनी जेबें भरी जा रही थीं। श्रद्धा का संबंध केवल धन से रह गया था। ऐसे समय में कबीरदास जैसे संतों ने धार्मिक अंधविश्वासों का विरोध करते हुए काशी में खड़े होकर कहा–

पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार।
याते यह चाकी भली जो पीस खाए संसार।।[2]

उन्होंने न सिर्फ़ हिंदुओं के धार्मिक अंधविश्वासों पर प्रहार किया बल्कि मुस्लिमों में व्याप्त धर्मांधता पर भी निशाना साधा–

कंकर-पत्थर जोरि के मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे का बहरा भया खुदाय।।[3]

समाज में मूर्तिपूजा जैसी मान्यताएँ व रूढ़ियाँ फैली हुई थीं। लोग मनुष्य से अधिक पत्थरों को महत्त्व दे रहे थे। संत कवियों ने इन सारी सामाजिक कुरीतियों का गहनता से निरीक्षण किया व अपनी वाणियों द्वारा इनका खंडन करने का प्रयास किया। इन्होंने काल्पनिक बातें नहीं कीं। प्रत्येक मान्यता व विश्वासों पर प्रश्न उठाए, जो विश्वास व मान्यताएँ तर्क की कसौटी पर खरे नहीं उतरे उन मान्यताओं को नकार दिया। जो लोग ईश्वर को मंदिर-मस्जिद व मूर्तियों में ढूँढ रहे थे, उनको मार्ग दिखाते हुए रैदास ने लिखा–

बाहर खोजत का फिरई, घट भीतर ही खोज।
रैदास उनमनि साधकर, देखहुँ पिआ को ओज।।[4]

रैदास ने कहा कि उस ईश्वर को तू बाहर क्यों ढूँढ रहा है। वह परमशक्ति तुम्हारे अंदर समाई हुई है। जब ध्यान द्वारा तुम अपने अंतर्मन में झाँककर देखोगे तो तुम्हें अपने प्रियतम (ईश्वर) का साक्षात्कार होगा। कबीरदास ने भी तीर्थस्थलों पर ईश्वर को ढूँढने वाले तथा दर-दर भटकने वाले मनुष्यों को चेताते हुए कहा–

मोको कहाँ ढूँढे रे बन्दे मैं तो तेरे पास में।
ना तीरथ में ना मूरत में, ना एकांत निवास में।।
ना मंदिर में ना मस्जिद में, ना काबे कैलास में।
ना मैं जप में ना मैं तप में, ना मैं बरत-उपास में।।
ना मैं क्रिया-करम में रहता, नहिं जोग-संन्यास में।
नहीं प्राण में नहीं पिंड में, ना ब्रह्माण्ड आकाश में।।
खोजि होए तुरत मिल जाऊँ, इक पल की तलास में।
कहत कबीर सुनो भई साधो, मैं तो हूँ विश्वास में।।[5]

कबीरदासजी कहते हैं कि तुम ईश्वर को वहाँ खोज रहे हो जहाँ वह कभी मिल ही नहीं सकता। और जहाँ वह मिल सकता है, वहाँ तुमने खोजने का प्रयास ही नहीं किया। जब ईश्वर सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है, प्राणीमात्र में उसका अंश है तो फिर मंदिर-मस्जिद जैसे विशेष स्थानों पर उसे ढूँढने की क्या आवश्यकता है। ईश्वर को मंदिर-मस्जिद और काबा-कैलाश जैसे तीर्थ स्थलों पर खोजना मूर्खता है। विशेष प्रकार के कर्मकांड करने से या गृहस्थ जीवन छोड़कर वैराग्य धारण करने से उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। यदि कोई व्यक्ति वास्तव में ही उसे खोजने की सच्ची लगन रखता है तो वह क्षण भर में ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। बशर्ते वह अपने अंतर्मन में झाँककर देखे।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि लगभग सभी संत कवि समाज की निम्न समझी जाने वाली जातियों से आते थे। समाज के उच्च वर्ग से इनको लगातार उपेक्षा, अपमान और तिरस्कार मिला। इन्हें धार्मिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया। यहाँ तक कि मंदिरों तक में इनका प्रवेश वर्जित था। वेदादि ग्रंथों के अध्ययन की भी मनाही थी। अतः इन कवियों ने भक्ति का आसान रास्ता निकाला। यह मार्ग वेदशास्त्रों में वर्णित मार्ग जितना कठिन नहीं था। इसके लिए गृहत्याग करके वानप्रस्थ होने की आवश्यकता नहीं थी, अन्न, जल व वस्त्र त्याग करने की आवश्यकता नहीं थी। गृहस्थ जीवन में रहते हुए तथा अपने प्रतिदिन के कर्मों को करते हुए भी भक्ति को किया जा सकता था। यही कारण था कि समाज के अधिकतर साधारण वर्गों के लोग इनसे प्रभावित हुए और अंधविश्वास व बाह्याडंबरों को त्यागकर इनकी शिक्षाओं पर चलने लगे। गुरु नानक देव के विषय में कहा जाता है कि हिंदू व मुस्लिम दोनों ही धर्मों के लोग इनके अनुयायी बने। हिंदू धर्म के लोग इन्हें 'गुरु' कहते थे तथा मुस्लिम धर्म के लोग 'पीर' कहकर उनका सम्मान करते थे। संत कवियों का

यह सामाजिक-धार्मिक एकता का प्रयास सामाजिक समरसता व सौहार्द स्थापित करने की दिशा में एक बड़ा क़दम था।

दोनों ही धर्मों में कट्टरता तथा अंधविश्वास अपने चरम पर था तथा सर्वसाधारण इनसे तंग आ चुका था, इनसे छुटकारा चाहता था। ऐसे समय में संत कवियों द्वारा दिखाये गये सहज भक्ति के मार्ग ने उन्हें आकर्षित किया। वर्गभेद व जातिभेद का खंडन करते हुए उन्होंने मानवता का संदेश दिया। सामाजिक समरसता का संदेश देते हुए गुरुनानक देवजी लिखते हैं–

अव्वल अल्लाह नूर उपाया कुदरत के सब बंदे।
एक नूर ते सब जग उपजाया कौन भले को मंदे।।

धार्मिक एकता का संदेश देते हुए रैदास भी लिखते हैं–

मसजिद सो कछु घिन नहीं मंदिर सों नहीं पिआर।
दोउ मँह अल्लाह राम नहिं, कह रैदास चमार।।
मुसलमान से दोस्ती, हिंदुवन से कर प्रीत।
रैदास ज्योति सभ हरि की, सभ हैं अपने मीत।।[6]

कहने का अभिप्राय यही है कि मंदिर और मस्जिद जाने से ईश्वर-अल्लाह की प्राप्ति नहीं हो सकती। उन्होंने कहा कि तुम मंदिर-मस्जिद और हिंदू मुसलमान के नाम पर आपस में लड़ रहे हो, जबकि सभी जीवों की उत्पत्ति तो उस एक राम से ही हुई है। राम–जो सबके अंदर रमा हुआ है, जो सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। जब प्रत्येक प्राणी के अंदर उस परम शक्ति की ज्योति समाई हुई है तो फिर धर्म के नाम पर आपस में लड़ने से कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं है।

मध्यकाल में सामाजिक समरसता को खंडित करने में सांप्रदायिकता के अतिरिक्त दूसरी सबसे बड़ी भूमिका जाति-व्यवस्था द्वारा जनित अस्पृश्यता व छुआछूत की थी। जाति-व्यवस्था के विकृत रूप ने समाज को कभी एकता के सूत्र में नहीं बँधने दिया। संभवतः यही कारण था कि इतने वर्षों तक भारतवर्ष को पराधीनता की बेड़ियाँ पहननी पड़ी। लोग अपनी-अपनी जातियों तक सीमित थे। अपनी जाति के हित से ऊपर उठकर वे राष्ट्रहित के बारे में नहीं सोच रहे थे। संत रैदास ने मनुष्यों को सचेत करते हुए कहा कि जब तक जाति-व्यवस्था का अंत नहीं होता, तब तक सभी मनुष्य एक नहीं हो सकते। जाति-व्यवस्था

भारतीय समाज में इतनी गहरी जड़ें जमा चुकी है कि इससे मुक्ति पाना बड़ा ही जटिल कार्य प्रतीत होता है। जिस प्रकार केले के वृक्ष के तने को काटने पर उसमें से और पत्ते निकलते जाते हैं, उसी प्रकार भारतीय समाज में जितनी जातियाँ हैं, उनमें से और भी अनेक उपजातियाँ निकलती जाती हैं। वे लिखते हैं–

जाति-जाति में जाति हैं, जो केतन के पात।
रैदास मनुष ना जुड़ सके जब तक जाति न जात।।[7]

जब किसी जाति विशेष में जन्म लेने के कारण एक मनुष्य को श्रेष्ठ और दूसरे मनुष्य को नीच समझा जा रहा था। लोग सिर्फ़ जाति के आधार पर श्रेष्ठता का दावा कर रहे थे। कर्म का कोई महत्त्व नहीं रह गया था। ऐसे समय में रैदास इस भ्रम को तोड़ते हुए लिखते हैं–

रैदास जन्म के कारने होत न कोई नीच।
नर कूँ नीच कर डारि है, ओछे करम की कीच।।[8]

उन्होंने कहा कि किसी जाति विशेष में जन्म लेने के कारण कोई व्यक्ति नीच नहीं होता। व्यक्ति के नीच कर्म उसे नीच बनाते हैं। मनुष्य का सम्मान जाति के आधार पर न होकर कर्म के आधार पर होना चाहिए। ऊँच या नीच मानव के कर्मों पर आधारित होता है जन्म पर नहीं।

यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी नीच कर्म करता है तो ऐसे व्यक्ति का सिर्फ़ ऊँची जाति के आधार पर सम्मान नहीं होना चाहिए। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति निम्न कुल में जन्मा है किंतु कर्म से वह सत्कर्मी है, चरित्र से वह गुणवान है तो ऐसे व्यक्ति का उसके चरित्र व गुणों के आधार पर सम्मान किया जाना चाहिए। वे लिखते हैं–

रैदास ब्राह्मण मत पूजिए जो होवे गुणहीन।
पूजिए चरण चंडाल के जो होवे गुण प्रवीन।।[9]

रैदास जहाँ जाति-व्यवस्था का विरोध करते हुए सामाजिक एकता व समरसता पर बल देते हैं वहीं धार्मिक कट्टरता व सांप्रदायिकता के विरोध में भी स्वर उठाते हुए धार्मिक सहिष्णुता की स्थापना करते हैं–

हिंदू तुरक महिं नहीं कछु भेदा, दुई आयो इक द्वार।
प्राण पिंड लौह मांस एक ही कहे रैदास विचार।।[10]

अर्थात् हिंदू व मुस्लिम दोनों में ही कोई भेद नहीं है। दोनों का जन्म समान प्रक्रिया से हुआ है। दोनों का शरीर समान पंच तत्त्वों से निर्मित है तथा दोनों के ही शरीर में उस परम शक्ति का वास है। तो फिर धर्म के नाम पर व्यर्थ ही एक-दूसरे से घृणा करने का क्या लाभ। कबीरदास भी इस विषय पर हिंदुओं व मुस्लिमों दोनों को ही कड़े शब्दों में फटकारते हुए कहते हैं–

जो तूं ब्राह्मण-ब्राह्मणी का जाया।
आन बाट काहे नहीं आया।।
जो तू तुरक-तुरकनी जाया।
भीतर खतना क्यों न कराया।[11]

कबीर कहते हैं कि अगर तू जन्म के आधार पर स्वयं को इतना ही श्रेष्ठ ब्राह्मण मानता है तो तेरे जन्म लेने की प्रक्रिया दूसरों के ही जैसी क्यों है? जिस माँ के गर्भ से संसार के समस्त प्राणी जन्म लेते हैं उसी माँ के गर्भ से तेरा भी जन्म हुआ है। अगर तेरे जन्म लेने की प्रक्रिया सामान्य न होकर विलक्षण होती, फिर तो मैं स्वीकार कर भी लेता कि तू बहुत बड़ा पंडित या विद्वान है। इसी प्रकार वे इस्लाम में व्याप्त 'ख़तना' जैसी कुप्रथाओं का विरोध करते हुए कहते हैं कि अगर तुम्हारे मज़हब की ख़तना प्रथा इतनी ही दैवीय है और तुम स्वयं को इतने ही सच्चे मुसलमान मानते हो तो जन्म के पश्चात् ख़तना क्यों करते हो। ख़तने के साथ ही तुम्हारा जन्म क्यों नहीं हुआ? कहने का अभिप्राय है कि व्यक्ति जब जन्म लेता है तब न उसका कोई धर्म होता है, न कोई जाति होती है। यह सब ईश्वर ने नहीं बनायी बल्कि मनुष्यों की स्वयं की निर्मिति है।

लगभग सभी संत कवियों ने जन्म का महत्त्व गौण करके कर्म को श्रेष्ठ माना है। उन्होंने माना है कि मनुष्य के कर्म श्रेष्ठ होने चाहिए। उच्च कुल में जन्म लेकर व्यक्ति यदि नीच कर्म करता है तो उसका उच्च कुल में जन्म लेने का कोई लाभ नहीं है। कबीरदास इस विषय में उदाहरण देते हुए कहते हैं–

ऊँचे कुल का जनमिया, करणी ऊँच न होइ।
सुबरण कलश सुरा भरा, साधु निंदा सोई।।[12]

जिस प्रकार मदिरा से भरा स्वर्ण कलश सज्जन लोगों की निंदा ही प्राप्त करता है उसी प्रकार नीच कर्म वाला उच्च कुल में जन्मा व्यक्ति भी समाज में सज्जन लोगों के तिरस्कार व अपमान का ही पात्र बनता है। जिस प्रकार कलश का महत्त्व नहीं है- वह लोहे का हो या सोने का। महत्त्व इस बात का है कि

वह किस प्रयोग में लाया जा रहा है। उसी प्रकार महत्त्व इस बात का नहीं है कि व्यक्ति किस जाति या कुल में जन्मा है, महत्त्व इस बात का है कि वह सत्कर्म करके समाज में सम्मान का पात्र बन रहा है या दुष्कृत्य करके अपमान का पात्र बन रहा है। संत चरणदास भी ब्राह्मण शब्द की वास्तविक परिभाषा देते हुए लिखते हैं–

ब्राह्मण सों जो ब्रह्म पिछाणे।
बाहर जाता भीतर आने।।
पाँचों बम करि झूठ न भाखे।
दया जनेऊ अन्तरि राखे।।
आत्म विद्या पढ़े-पढ़ावे।
परमात्म में ध्यान लगावे।।
काम क्रोध मद लोभ न होई।
चरणदास कहे ब्राह्मण सोई।।"

अर्थात् ब्राह्मण वही है जो वास्तव में ब्रह्म को पहचानता है। जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण कर लेता है, उन्हें विषय-विकारों से हटाकर अंतर्मुखी कर लेता है। जिस व्यक्ति ने अपनी पाँचों ज्ञानेंद्रियों को जीत लिया है, जो कभी असत्य नहीं बोलता। जिसने बाहरी जनेऊ के स्थान पर अपने हृदय में दया का जनेऊ धारण कर रखा है, जिसे स्वयं भी अध्यात्म का ज्ञान है तथा ज्ञान का अहंकार किये बिना दूसरों को भी प्यार बाँटता है। जो संसार में रहते हुए भी संसार में न उलझकर निरंतर ईश्वर के ध्यान में मग्न रहता है। काम, क्रोध, मद, लोभ को जिसने अपने हृदय से निकाल फेंका है। संत चरणदास की दृष्टि में वही मनुष्य वास्तव में ब्राह्मण कहे जाने के योग्य हैं। छुआछूत व अस्पृश्यता का विरोध करते हुए कबीर स्वयं को श्रेष्ठ समझने वाले ब्राह्मणों से पूछते हैं–

पंडित देखहु मन मुँह जानी।
कछु धै छूति कहाँ ते उपजी, तबहिं छूति तुम मानी।।

कबीर कहते हैं कि स्वयं को श्रेष्ठ मानने वाले पंडितों, तुम ज़रा सोच-विचार करके देखो और बताओ कि छुआछूत आखिर पैदा कहाँ से हुई है? कहीं न कहीं से तो इसकी शुरूआत हुई होगी, तभी तुमने इसे स्वीकार किया होगा। जिस पवित्रता का तुम ढोंग-दिखावा करते हो उस पवित्रता का संसार में कहीं अस्तित्व ही नहीं है। सृष्टि का निर्माण ही छूत से हुआ है। यहाँ तक कि जो भोजन तुम

खाते हो, वह भी छूत से नहीं बच पाया है। यदि संसार में छूत से कोई बच पाया है तो केवल वह इंसान बच पाया है जो माया से अछूता है। माया के प्रभाव में आया व्यक्ति भी अपवित्र ही है। निम्न वर्ग के मंदिर व तीर्थ स्थलों में प्रवेश न करने का पुरोहित वर्ग ने यह तर्क दिया कि उनके मंदिर प्रवेश करने से मंदिर या ईश्वर अपवित्र हो जायेंगे। उनके इस पवित्रता के ढोंग पर कुठाराघात करते हुए रैदास लिखते हैं–

रैदास कनक अरु कंगन माहिं, जिमि अंतर कछु नाहिं।
तैसोइ अंतर नहिं, हिंदुअन तुरकन माहिं।।[13]

तत्कालीन समाज में व्याप्त बाह्य आडम्बरों के विरुद्ध भी संत कवियों ने अपनी आवाज़ को बुलंद किया। व्रत, पूजा, तीर्थाटन, तपस्या, वनवास आदि का विरोध करते हुए उन्होंने नैतिकता पूर्ण व सदाचार पूर्ण भक्ति करने का संदेश दिया। मूर्तिपूजा व अंधविश्वास का विरोध करते हुए कबीर दास कहते हैं–

"माटी का एक नाग बना के, पूजे लोग-लुगाया।
जिंदा नाग जब घर मे निकले, ले लाठी धमकाया।।
जिंदा बाप कोई न पूजे, मरे बाद पुजवाया।
मुठ्ठीभर चावल ले के कौवे को बाप बनाया।।[14]

इसी प्रकार जो व्यक्ति घर छोड़कर जंगलों में ईश्वर को खोजने जाते हैं, उन्हें चेताते हुए रैदास कहते हैं–

नेक कमाई जउ करइ, गृह तजि वन नहिं जाय।
रैदास हमारो राम राय, ग्रह महिं मिलहिं आय।।
वन खोजो पी न मिलै, वन मैं प्रीतम नाहिं।
रैदास पी हम बसै, रहियो मानव प्रेमी माहिं।।

अर्थात् ईश्वर को खोजने के लिए घर-परिवार त्यागकर वनों में जाने की आवश्यकता नहीं है। जो व्यक्ति गृहस्थ जीवन में रहते हुए, परिश्रम से अपना जीवननिर्वाह करते हैं, उन्हें ईश्वर स्वयं ही घर बैठे-बैठे प्राप्त हो जाते हैं। रैदास कहते हैं कि ईश्वर वन में नहीं है, वह तो हमारे अंदर बसा हुआ है। हमें बस अपने अंतर्मन में झाँककर देखने की आवश्यकता है। जिस प्रकार कस्तूरी हिरण की नाभि में बसी होती है। उसकी सुगंध को महसूस करता हुआ वह उसे पूरे जंगल में ढूँढता फिरता है, परंतु उसे प्राप्त नहीं कर पाता। क्योंकि कस्तूरी की

खुशबू उसकी नाभि से आती है। उसी प्रकार परमात्मा हमारे अंदर रमा हुआ है। उसे हम कितना भी बाहर ढूँढते फिरें, वह हमें नहीं मिल सकता। उसको ढूँढने के लिए हमें अपने अंतर्मन में झाँकने की आवश्यकता है–

कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूँढे वन माहिं।
मेरा साहिब मुझमें बसे, दुनिया जाने नाहिं।।''

संत कवियों की एक बड़ी उपलब्धि यह रही है कि वे अपने समय से कहीं आगे थे। ये उस समय को देख पाये जिसकी कल्पना करना भी तत्कालीन मनुष्यों के लिए मुश्किल था। रैदास की 'बेग़मपुरा की संकल्पना' इसी का उदाहरण है। जब देश छोटी-छोटी रियासतों में बँटा हुआ था, स्थानीय राजा अपनी रियासत को ही देश समझते थे। एक समतामूलक राष्ट्र की कल्पना करना भी उनके लिए दुःसाध्य था। ऐसे समय में संत कवियों ने ऐसे समाज की परिकल्पना की जिसमें सभी मनुष्य समान हों, किसी को कोई दुख-तक़लीफ़ न हो, न कोई अमीर हो न गरीब हो। संसाधनों पर सभी का समान अधिकार हो। लोग जाति के नाम पर, धर्म के नाम पर, ईश्वर के नाम पर आपस में न लड़ें। धर्म तोड़ने का नहीं बल्कि जोड़ने का माध्यम बने। अपनी समाजवादी सोच पर आधारित समता मूलक समाज की परिकल्पना करते हुए रैदास कहते हैं–

ऐसा चाहूँ राज मैं जहाँ मिलै सबन को अन्न।
छोट-बड़ो सब सम बसै, रैदास रहै प्रसन्न।।[15]

रैदास ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहाँ संपत्ति पर किसी का निजी अधिकार नहीं होगा। वहाँ कोई छूत-अछूत नहीं होगा। वे एक ऐसा शहर बसाना चाहते हैं जहाँ कोई ग़म न हो। इसलिए उन्होंने इसको 'बेगमपुरा' नाम दिया। कार्लमार्क्स ने 19वीं शताब्दी में जो 'साम्यवाद का सिद्धांत' दिया वह सारी बातें रैदास जैसे संत आज से 546 वर्ष पूर्व अपनी वाणियों में कह चुके हैं। बेगमपुरा शहर के बारे में वे कहते हैं–

बेगमपुरा सहर को नाउ, दुखु-अंदोहु नहीं तिहि ठाउ।
ना तसबीस खिराजु न मालु, खउफु न खता न तरसु जुवालु।
अब मोहि खूब बतन गह पाई, ऊहाँ खैरि सदा मेरे भाई।
काइमु-दाइमु सदा पातिसाही, दोम न सोम एक सो आही।
आबादानु सदा मसहूर, ऊहाँ गनी बसहि मामूर।

तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावै, महरम महल न को अटकावै।
कह 'रविदास' खालस चमारा, जो हम सहरी सु मीतु हमारा।

रैदास कहते हैं कि हे भाइयो! मैंने एक ऐसा नगर खोज लिया है, उस शहर को पा लिया है जहाँ सब कुछ न्यायोचित है। हालाँकि वह नगर अभी दूर है। उस नगर में सभी एक समान हैं। वह देश हमेशा आबाद रहता है। वहाँ लोग जन्मजात व्यवसाय के बंधन से पूर्णतया मुक्त हैं और जो चाहे कर्म करते हैं। उनके ऊपर जाति या धर्म का कोई बंधन नहीं है। उस देश के सामंत (मध्यकाल में सामंतवाद प्रचलन में था) किसी के कार्य में बाधा नहीं डालते। रैदास कहते हैं कि जो भी इस बेगमपुरा शहर की स्थापना में हमारा समर्थक है, वही हमारा मित्र है। अतः हम कह सकते हैं कि मध्यकाल में दिग्भ्रमित समाज को दिशा देने में संत कवियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। कबीर ने जहाँ कड़े शब्दों में समाज में व्याप्त विषमता, धर्मांधता, रूढ़िवादिता और साम्प्रदायिकता का विरोध किया वहीं रैदास, नानक, दादू दयाल आदि संतों ने प्रेम की भाषा अपनाते हुए एक समतामूलक समाज की स्थापना की। इन्हें संत कवियों के अथक प्रयासों से तत्कालीन समय में सामाजिक समरसता को पुनः स्थापित करने में सहायता मिली। संत कवियों के इन्हीं प्रयासों के कारण भक्तिकाल को 'स्वर्ण युग' की संज्ञा दी गयी। इनके द्वारा तत्कालीन समय में कही गयी बातें 600-700 वर्ष गुज़र जाने के बाद भी वर्तमान समय में ज्यों की त्यों प्रासंगिक है। वर्तमान समय में जिस प्रकार से सांप्रदायिकता, जाति-व्यवस्था नये रूप में उभर रही है ऐसे में आवश्यक है कि इन संतों की वाणियों को अपने जीवन में आत्मसात् किया जाये।

लेखक गुरु जंभेश्वर विज्ञान एवं
प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार हरियाणा के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं।

संदर्भ

1. तैत्तिरीयोपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर, प्रथम संस्करण, शिक्षावली, एकादश अनुवादक, पृ. 58
2. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुंदर दास, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।
3. वही,
4. महान संत रैदास, हरिकृष्ण देवसरे, वंदना बुक एजेंसी, प्रीत विहार, दिल्ली।
5. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुन्दर दास, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।

6. महान संत रैदास, हरिकृष्ण देवसरे, वंदना बुक एजेंसी, प्रीत विहार, दिल्ली।
7. वही,
8. वही,
9. वही,
10. वही,
11. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुन्दर दास, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।
12. वही,
13. महान संत रैदास, हरिकृष्ण देवसरे, वंदना बुक एजेंसी, प्रीत विहार, दिल्ली।
14. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुन्दर दास, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।
15. महान संत रैदास, हरिकृष्ण देवसरे, वंदना बुक एजेंसी, प्रीत विहार, दिल्ली।

3rd INTERNATIONAL CONFERENCE

RELEVANCE OF INDIAN KNOWLEDGE SYSTEM IN THE 21ST CENTURY

29-30 DECEMBER 2022

ORGANIZED BY

HARYANA SANSKRIT ACADEMY, PANCHKULA

AND

AMITY SCHOOL OF LIBERAL ARTS, AMITY UNIVERSITY HARYANA

IN COLLABORATION WITH

HARYANA KALA PARISHAD, GOVT. OF HARYANA

Certificate of Paper Presentation

This is to certify that **Sachin,** Research scholar, Guru Jambheshwar University of Science and Technology Hisar, has presented a paper entitled **Nation and Character Building Through Indian Knowledge System** in the **3rd International Conference on Relevance of Indian Knowledge System in the 21st Century** organized by Amity School of Liberal Arts, Amity University Haryana in association with Haryana Sanskrit Akademi, Panchkula and Haryana Kala Parishad, Govt of Haryana on 29th & 30th December 2022.

Prof. Sanjay K Jha	**Dr. Dinesh Chandra Shashtri**	**Prof. (Dr) Vikas Madhukar**	**Prof. (Dr.) P.B. Sharma**
Conference Chair and Director (Liberal Arts)	Director	Pro Vice Chancellor	Vice Chancellor
Amity University Haryana	Haryana Sanskrit Akademi	Amity University Haryana	Amity University Haryana

आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी

सम्बद्ध - चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी (हरियाणा)

एवं

हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला

के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित

एक दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी

विषय : संत-साहित्य की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/सुश्री/डॉ. सचिन

संस्था का नाम गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार

ने दिनांक 19 फरवरी 2023 को आयोजित एक दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में अध्यक्ष/मुख्य वक्ता/बीज वक्ता/प्रतिभागी के रूप में वैचारिक योगदान दिया।

इन्होंने सामाजिक समरसता एवं संत साहित्य

विषय पर अपना शोध-पत्र प्रस्तुत किया।

श्रीमती रचना अरोड़ा	डॉ. मधुमालती	डॉ. रमाकांत शर्मा
प्राचार्या	विभागाध्यक्ष एवं मुख्य संयोजिका	संयोजक

International Conference

on

Relevance of Guru Jambheshwar Ji's Ethical, Spiritual and Environmental Thinking in the Present Times

August 22-23, 2024

Certificate

This is certified that Prof./Dr./Mr./Ms. Sachin Gautam

from GJUS&T, Hisar *participated /presented a paper*

titled भक्ति आंदोलन में गुरु जम्भेश्वर जी का योगदान

during ***International Conference*** *on* ***Relevance of Guru Jambheshwar Ji's Ethical, Spiritual and Environmental Thinking in the Present Times*** *organized by Guru Jambheshwar Ji Maharaj Institute of Religious Studies, Guru Jambheshwar University of Science and Technology, Hisar held during August 22-23, 2024*

Dr. Jaidev Bishnoi	**Prof. Kishna Ram Bishnoi**	**Prof. N. K. Bishnoi**
Organizing Secretary, Conference	Convener, Conference	Director, Conference

हिंदी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

द्वारा आयोजित

पुरुष विमर्श पर केंद्रित

दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी

दिनांक : 20-21 मार्च, 2026

विषय : समकालीन समाज में पुरुष विमर्श : संवेदना, संघर्ष और अस्मिता

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रो./डॉ./श्री/श्रीमती/सुश्री सचिन गौतम पद शोधार्थी संस्थान हिंदी-विभाग, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय हिसार ने 20-21 मार्च, 2026 को "समकालीन समाज में पुरुष विमर्श : संवेदना, संघर्ष और अस्मिता" विषय पर हिंदी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में आयोजित दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में सत्राध्यक्ष/ बीज वक्ता/ विशिष्ट वक्ता/ आलेख-वाचक/प्रतिभागी के रूप में भाग लिया तथा अपना वैचारिक योगदान दिया।

इन्होंने इस संगोष्ठी में समकालीन यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में अखिलेश की कहानियों में बेरोजगार युवा और पुरुष विमर्श विषय पर अपना शोध-पत्र प्रस्तुत किया।

संयोजक

प्रो. अशोक कुमार

अध्यक्ष, हिंदी-विभाग

पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

हिंदी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

द्वारा

चंडीगढ़ साहित्य अकादमी, चंडीगढ़

के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित

एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

दिनांक : 27 फरवरी, 2026

विषय : भारतीय वाङ्मय में सैनिक विमर्श : अनुभव, संघर्ष और राष्ट्रीय अस्मिता

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रो./डॉ./श्री/श्रीमती/सुश्री सचिन गौतम पद शोधार्थी संस्थान गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार ने 27 फरवरी, 2026 को "भारतीय वाङ्मय में सैनिक विमर्श : अनुभव, संघर्ष और राष्ट्रीय अस्मिता" विषय पर हिंदी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में आयोजित एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में सत्राध्यक्ष/ बीज वक्ता/ विशिष्ट वक्ता/ आलेख-वाचक/प्रतिभागी के रूप में भाग लिया तथा अपना वैचारिक योगदान दिया।

इन्होंने इस संगोष्ठी में मध्यकालीन साहित्य में युद्ध, वीरता और सैनिक गौरव विषय पर अपना शोध-पत्र प्रस्तुत किया। [Online Mode]

संयोजक
प्रो. अशोक कुमार
अध्यक्ष, हिंदी-विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

हिंदी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

द्वारा

वैष्णव साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् प्रो. लक्ष्मीनारायण शर्मा की स्मृति में
आयोजित दो दिवसीय स्मृति एवं साहित्य उत्सव के अंतर्गत आयोजित

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

दिनांक : 07-08 नवम्बर, 2025

विषय : प्रो. लक्ष्मीनारायण शर्मा : विचार और विरासत

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रो./डॉ./श्री/श्रीमती/सुश्री सचिन गौतम पद शोधार्थी संस्थान गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा ने 07-08 नवम्बर, 2025 को "प्रो. लक्ष्मीनारायण शर्मा : विचार और विरासत" विषय पर हिंदी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में सत्राध्यक्ष/बीज वक्ता/विशिष्ट वक्ता/ आलेख-वाचक/प्रतिभागी के रूप में भाग लिया तथा अपना वैचारिक योगदान दिया।

इन्होंने इस संगोष्ठी में 'वर्तमान समय में रामचरितमानस की प्रासंगिकता' विषय पर अपना शोध-पत्र प्रस्तुत किया।

संयोजक

प्रो. अशोक कुमार
अध्यक्ष, हिंदी-विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़